गल्प-संसार-माला

भाग—१ : हिन्दी

सपादक

श्रीपतराय

: लेखक-गण :

प्रेमचद 'अज्ञेय'

'सुदर्शन' राधाकृष्ण

जैनेन्द्रकुमार उषादेवी मित्रा

जयशकर 'प्रसाद' कमलाकान्त वर्मा

भगवतीचरण वर्मा कमलादेवी चौधरी

सियारामशरण गुप्त चन्द्रगुप्त विद्यालकार

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

प्रकाशक

सरस्वती प्रेस, बनारस।

सूची

ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोजो के वाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षो पर कुछ अजीव हरियाली है, खेतो मे कुछ अजीव रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो ससार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव मे कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते मे वटन नही है, पडोस के घर मे सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कडे हो गये हैं, उनमे तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी वैलो को सानी-पानी दे दे। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकडो आदमियो से मिलना-भेटना। दोपहर के पहले लौटना असभव है। लडके सवसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नही; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे वडे-वूढो के लिए होगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अव जल्दी पडी है कि लोग ईदगाह क्यो नही चलते। इन्हे गृहस्थी की चिंताओ से क्या प्रयोजन! सेवैयो के लिए दूध और शक्कर घर में है या नही, इनकी वला से, ये तो सेवैयाँ खायँगे। वह क्या जाने अव्वाजान क्यो वदहवास चौधरी कायमअली के घर दौडे जा रहे हैं। उन्हें क्या खवर कि चौधरी आज आँखे वदल ले, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेवो मे तो कुवेर का धन भरा हुआ है। वार-वार जेव से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं, और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक दो, दस, वारह! उसके पास वारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे है। इन्ही अन-

गिनती पैसो मे अनगिनती चीजे लायेगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेद और जाने क्या-क्या। औरसबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और मा न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता नही चला क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था! दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल मे ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से बिदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढी दादी अमीना की गोद मे सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बा-जान रुपये कमाने गये हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर उसके लिए बडी अच्छी-अच्छी चीजे लाने गई है; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बडी चीज है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव मे जूते नही है, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामते लेकर आयेगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी मे बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर मे दाना नही! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती? इस अधकार और निराशा मे वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोडी ईद को! इस घर मे उसका काम नही है, लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अदर प्रकाश है; बाहर आशा! विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आये, हामिद की आनद-भरी चितवन उसका विध्वस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नही अम्मा, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है। उसे कैसे अकेले मेले जाने दे। उस भीड-भाड मे बच्चा कही खो जाय तो क्या हो। नही, अमीना उसे यो न जाने देगी। नन्ही-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे? पैर मे छाले पड जायँगे। जूते भी तो नही हैं। वह थोडी-थोडी दूर पर उसे गोद ले लेगी, लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकायेगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घटो चीज़े जमा करने लगेगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिये थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी, इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालिन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नही है, तो दो पैसे का रोज़ दूध तो चाहिए ही। अब कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब मे, पाँच अमीना के बटवे मे। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेडा पार लगाये। धोबिन और नाइन, मेहतरानी और चूडीहारिन सभी आयेगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोडा किसी की आँखो नही लगता। किस-किस से मुँह चुरायेगी? और मुँह क्यो चुराये? साल भर का त्योहार है। जिन्दगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चो के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब-के-सब दौडकर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खडे होकर साथवालो का इन्तज़ार करते। यह लोग क्यो इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरो मे तो जैसे पर लग गये है। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सडक के दोनो ओर अमीरो के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेडो मे आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लडका ककडी-उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली

अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लाङ्ग पर है। खूब हँस रहे है। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बडी-बड़ी इमारतें आने लगी। यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लबघर है! इतने वड़े कालेज मे कितने लड़के पढते होगे। सब लडके नही जी! वड़े-बडे आदमी है, सच। उनकी बडी-बड़ी मूँछे है। इतने वड़े हो गये, अभी तक पढते जाते है। न-जाने कब तक पढेगे और क्या करेंगे इतना पढकर। हामिद के मदरसे मे दो-तीन वडे-वड़े लड़के है, बिलकुल तीन कौडी के, रोज़ मार खाते है, काम से जी चुरानेवाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होगे और क्या। क्लबघर मे जादू होता है। सुना है, यहाँ मुर्दो की खोपड़ियाँ दौड़ती है। और वड़े-वड़े तमाशे होते है, पर किसी को अन्दर नही जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते है। वडे-वड़े आदमी खेलते है, मूछो-दाढीवाले। और मेमे भी खेलती है, सच। हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें, घुमाते ही लुढक जायँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोला—चलो, मनो आटा पीस डालती है। जरा-सा बैट पकड़ लेगी, तो हाथ काँपने लगेगे। सैकड़ो घडे पानी रोज़ निकालती है। पाँच घडे तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पडे तो आँखो तले अँधेरा आ जाय।

महमूद—लेकिन दौडती तो नही, उछल-कद तो नही सकती।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नही सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्मा इतना तेज़ दौडी कि मै उन्हे न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाइयो की दूकाने शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थी। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है! देखो न एक-एक दूकान पर मनो

होगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते है। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जायेंगे?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपयो की कमी? जिस खज़ाने मे चाहे चले जायँ। लोहे के दरवाजे तक उन्हे नही रोक सकते जनाव, आप है किस फेर मे? हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते है। जिससे खुश हो गये, उसे टोकरो जवाहरात दे दिये। अभी यहाँ बैठे है, पाँच मिनट मे कहो कलकत्ता पहुँच जायँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बडे-बडे होते होगे?

मोहसिन—एक-एक आसमान के वरावर होता है जी! ज़मीन पर खडा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे मे घुस जायँ।

हामिद—लोग उन्हे कैसे खुश करते होगे? कोई मुझे वह मतर वता दे, तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मै नही जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू मे बहुत से जिन्नात है। कोई चीज चोरी जाय, चौधरी साहव उसका पता लगा देगे और चोर का नाम भी वता देगे। जुमेराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कही न मिला। तब झक मारकर चौधरी के पास गये। चौधरी ने तुरत वता दिया, मवेशीखाने मे है, और वही मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरे दे जाते है।

अब सबकी समझ मे आ गया कि चौधरी के पास क्यो इतना धन है, और क्यो उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस-लाइन है। यही सब कानिसटिबल कवायद

करते हैं। रैटन! फाय फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते है, नहीं चोरियाँ हो जायँ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं। तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हजरत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू है, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरो से तो कहते है, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले मे जाकर 'जागते रहो, जागते रहो' पुकारते हैं। जभी इन लोगो के पास इतने रुपये आते है। मेरे मामू एक थाने मे कानिसटिबल है। बीस रुपये महीना पाते है, लेकिन पचास रुपये घर भेजते है। अल्ला कसम। मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपये कहाँ से लाते हैं? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहे तो एक दिन मे लाखो मार लावे। हम तो इतना ही लेते है, जिससे अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो इन्हे कोई पकडता नही?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हे कौन पकडेगा? पकडनेवाले तो यह लोग खुद है, लेकिन अल्लाह इन्हे सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम मे जाता है। थोड़े दिन हुए, मामू के घर मे आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड के नीचे सोये, अल्ला कसम, पेड के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाये तो बरतन-भॉडे आये।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज्यादे होते है?

'कहाँ पचास, कहाँ एक सौ? पचास एक थैली भर होता है। सौ तो दो थैलियो मे भी न आये।'

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जानेवालों की टोलियाँ नजर आने लगी। एक-से-एक भडकीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र मे बसे, सभी के दिलों मे उमंग। ग्रामीणों

का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सतोष और धैर्य्य में मगन चला जा रहा था। बच्चो के लिए नगर की सभी चीजे अनोखी थी। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से वार-वार हार्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आया। ऊपर इमली के घने वृक्षो का साया है। नीचे पक्का फर्श है, जिसपर जाजिम बिछा हुआ है। और रोजेदारो की पक्तियॉ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई है। पक्के जगत के नीचे तक, जहॉ जाजिम भी नही है, नये आनेवाले आकर पीछे की कतार मे खडे हो जाते है। आगे जगह नही है। यहॉ कोई धन और पद नही देखता। इस्लाम की निगाह मे सब बराबर है। इन ग्रामीणो ने भी वजू किया और पिछली पक्ति मे खडे हो गये। कितना सुन्दर सचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखो सिर एक साथ सिजदे मे झुक जाते है, फिर सब-के-सब एक साथ खडे हो जाते है, एक साथ झुकते है और एक साथ घुटनो के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखो वत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हो और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनतता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानद से भर देती थी, मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओ को एक लडी मे पिरोये हुए है।

(२)

नमाज खत्म हो गई है। लोग आपस मे गले मिल रहे है। मिठाई और खिलौनो की दुकानो पर धावा होता है। ग्रामीणो का यह दल इस विषय मे बालको से कम उत्साही नही है। यह देखो हिडोला है। एक पैसा देकर चढ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकडी के हाथी, घोडे, ऊँट छडो से लटके

हुए है। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करो का मज़ा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोडों और ऊँटो पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास है। अपने कोष का एक तिहाई ज़रा-सा चक्कर खाने के लिए नही दे सकता।

सब चर्खियो से उतरते है। अब खिलौने लेगे। उधर दूकानो की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने है—सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधू। वाह! कितने सुन्दर खिलौने है! अब बोला ही चाहते है। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कंधे पर बन्दूक रखे हुए, मालूम होता है अभी कवायद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है, मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उनके मुख पर, काला चुगा, नीचे सफेद अचकन के सामने जेब मे घडी की सुनहरी जजीर, एक हाथ मे कानून का पोथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किये चले आ रहे है। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने है। हामिद के पास कुल तीन पैसे है। इतने मँहगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कही हाथ से छूट पडे, तो चूर-चूर हो जाय। जरा पानी पडे तो सारा रग धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा? किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज पानी दे जायगा, साँझ-सबेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आयेगा, तो फौरन बन्दूक फैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुकदमा लडेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोयेगी।

हामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरे तो चकनाचूर हो जायें। लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेष कर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं, किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन, किसी ने सोहन हलवा। मज़े से खा रहे हैं। हामिद उनकी बिरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद, यह रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है!

हामिद को सदेह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा अबकी जरूर देंगे, हामिद, अल्ला कसम ले जाव।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?

सम्मी—तीन ही तो पैसे हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे?

महमूद—हम से गुलाबजामुन ले जाओ हामिद! मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयां लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद—हम समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जायेंगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खायगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दुकाने लोहे की चीज़ो की है। कुछ गिलट और नकली गहनो की। लडको के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे वढ जाते है। हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे ख़याल आया, दादी के पास चिमटा नही है। तवे से रोटियाँ उतारती है तो हाथ जल जाता है, अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दें, तो वह कितनी प्रसन्न होगी। फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर मे एक काम की चीज हो जायगी। खिलौनो से क्या फायदा! व्यर्थ मे पैसे खराव होते है। ज़रा देर ही तो ख़ुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठाकर नही देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट कर वरावर हो जायँगे, या छोटे बच्चे जो मेले नही आये है, ज़िद करके ले लेंगे और तोड डालेगे। चिमटा कितने काम की चीज़ है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे मे सेक लो। कोई आग माँगने आये तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्मा बेचारी को कहाँ फ़ुरसत है कि वाजार आये और इतने पैसे ही कहाँ मिलते है। रोज़ हाथ जला लेती है। हामिद के साथी आगे वढ़ गये है। सबील पर सब-के-सब शर्बत पी रहे है। देखो सब कितने लालची है। इतनी मिठाइयाँ ली, मुझे किसी ने एक भी न दी! उसपर कहते है, मेरे साथ खेलो, मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूँगा। खायँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े फुन्सियाँ निकलेगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुरायेगे और मार खायँगे। किताब मे झूठी वाते थोडे ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी। दादी चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेगी—मेरा बच्चा दादी के लिए चिमटा लाया है! हज़ारो दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतो को दिखायेगी। सारे गाँव मे चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगो के खिलौनो पर कौन इन्हे दुआएँ देगा। वड़ो की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार मे पहुँचती है, और तुरंत

सुनी जाती है। मेरे पास पैसे नही है। तभी तो मोहसिन और महमूद यो मिजाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिजाज दिखाऊँगा। खेले खिलौने और खायें मिठाइयाँ। मै नही खेलता खिलोने, किसी का मिज़ाज क्यो सहूँ। गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नही जाता। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आयेगे, अम्मा भी आयेगी ही। फिर इन लोगो से पूछूँगा, कितने खिलौने लोगे। एक-एक को टोकरियो खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तो के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नही कि एक पैसे की रेउडियाँ ली तो चिढा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब खूब हँसेगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसे, मेरी वला से। उसने दूकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा—और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—वह तुम्हारे काम का नही है जी।

'बिकाऊ है कि नही?'

'बिकाऊ क्यो नही है। और यहाँ क्यो लाये है?'

'तो बताते क्यो नही, कै पैसे का है।'

'छै पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक-ठीक बताओ?'

'ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेगे, लेना हो लो, नही चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मज़बूत करके कहा—तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ वह आगे बढ गया कि दूकानदार की घुडकियाँ न सुने।

लेकिन दूकानदार ने घुडकियाँ नही दी। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रखा, मानो बन्दूक है और शान से अकडता हुआ सगियो के पास आया। जरा सुनूँ, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते है।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यो लाया पगले। इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटककर कहा—ज़रा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यो नही। अभी कधे पर रखा वन्दूक हो गई। हाथ मे ले लिया, फकीरो का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगो के सारे खिलौनो की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाये मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नही कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खँजड़ी ली थी। प्रभावित होकर बोला, मेरी खँजडी से बदलोगे ? दो आने की है।

हामिद ने खँजडी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजड़ी का पेट फाड डाले। बस एक चमडे की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा-सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग मे, पानी मे, आँधी मे, तूफान मे बराबर डटा खडा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे है। फिर मेले से दूर निकल आये है, नौ कब के बज गये, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करे, तो चिमटा नही मिल सकता। हामिद है बडा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालको के दो दल हो गये है। मोहसिन महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ है, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला। लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक दो-दो साल बड़े होने पर भी

हामिद के आघातो से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाय तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोडकर भागे, वकील साहब की नानी मर जाय, चुगे मे मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जायँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिन्द लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखे निकाल लेगा।'

मोहसिन ने एडी-चोटी का जोर लगाकर कहा—'अच्छा, पानी तो नही भर सकता।'

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—'भिश्ती को एक डाँट बतायेगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिडकने लगेगा।'

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—'अगर बच्चा पकड जायँ तो अदालत मे बँधे-बँधे फिरेगे। तब तो वकील साहब ही के पैरो पडेगे।'

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—'हमे पकड़ने कौन आयेगा?'

नूरे ने अकड़कर कहा—'यह सिपाही बदूकवाला।'

हामिद ने मुँह चिढाकर कहा—'यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिंद को पकडेगे! अच्छा, लाओ अभी जरा कुश्ती हो जाय। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेगे। पकडेगे क्या बेचारे!'

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—'तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग मे जलेगा।'

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा; लेकिन यह बात नही हुई। हामिद ने तुरत जवाब दिया—'आग मे बहादुर ही कूदते है। जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियो की तरह घर में

घुस जायँगे। आग मे कूदना वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिंद ही कर सकता है।'

महमूद ने एक ज़ोर और लगाया—'वकील साहब कुरसी-मेज़ पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो वावर्चीखाने मे ज़मीन पर पड़ा रहेगा।'

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा वावर्चीख़ाने में पडे रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई फडकता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—'मेरा चिमटा वावर्चीखाने मे नही रहेगा। वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हे ज़मीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट मे डाल देगा।'

बात कुछ बनी नही। खाली गाली-गलौज थी; लेकिन कानून को पेट में डालनेवाली बात छा गई। ऐसा छा गई कि तीनो सूरमा मुँह ताकते रह गये, मानो कोई धेलचा कंकौआ किसी गंडेवाले कंकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकालनेवाली चीज है। उसको पेट के अन्दर डाल दिया जाये, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिंद है। अब इसमे मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी, किसी को भी आपत्ति नही हो सकती।

विजेता को हारनेवालो से सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरो ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किये; पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनो का क्या भरोसा? टूट-फूट जायँगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा वरसों!

सधि की शर्तें तय होने लगी। मोहसिन ने कहा—'ज़रा अपना चिमटा दो हम भी देखे। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।'

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया। और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आये। कितने खूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारनेवालो के आँसू पोछे—'मैं तुम्हे चिढा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनो की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।'

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सतोष नही होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नही छूट रहा है।

मोहसिन—'लेकिन इन खिलौनो के लिए कोई हमें दुआ न देगा।'

महमूद—'दुआ को लिये फिरते हो। उलटे मार न पडे। अम्मा जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हे मिले ?'

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनो को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होगी। तीन पैसे ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसो के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिंद है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गये। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

(३)

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई। मेलेवाले आ गये। मोहसिन की छोटी बहन ने दौडकर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियां भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक

सिधारे। इसपर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दोनो खूब रोये। उनकी अम्मा यह शोर सुनकर बिगडी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाये।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज़्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार मे दो खूँटियाँ गाड़ी गईं। उनपर लकडी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति इस सिहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतो मे खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पखा न हो! कानून की गर्मी दिमाग पर चढ जायगी कि नही। बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नही पंखे की हवा से या पंखे की चोट से, वकील साहब स्वर्ग-लोक से मर्त्य-लोक मे आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया! फिर बड़े जोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गईं।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण शक्ति तो नही, जो अपने पैरो चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमे कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथडे बिछाये गये, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनो छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोनें वाले, जागते रहो!' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी ही चाहिए। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पडती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिये जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है।

टाँग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्यो ही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है ! एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपांतर चाहो कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद मे उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ मे चिमटा देखकर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था ?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे मे ?'

'तीन पैसे दिये।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या यह चिमटा ! सारे मेले मे तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ?

हामिद ने अपराधी भाव से कहा—'तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं; इसलिए मैंने इसे ले लिया।'

बुढ़िया का क्रोध तुरंत स्नेह मे बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दो मे बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे मे कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरो को खिलौने लेते और मिठाइयाँ खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना जब्त

इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढिया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्‌गद् हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चा हामिद ने बूढे हामिद का पार्ट खेला था। बुढिया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बडी-बड़ी बूँदे गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

मधुआ

'आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नही? आज सातवाँ दिन है सरकार!'

'तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपडे से महँक आ रही है।'

'वह .. वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर—कई दिन हुए—अँधेरे मे बोतल उँड़ेलने लगा था। कपडे पर गिर जाने से नशा भी न आया और आपको कहने का: क्या कहूँ .. सच मानिए। सात दिन—ठीक सात दिन से एक बूँद भी नही।'

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ मे लडका पढता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी वही आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर मे, कभी-कभी सबेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—'तो आज पियोगे न?'

'झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सबको पिऊँगा। सात दिन चने-चबेने पर बिताये किसलिए?'

'अद्भुत ! सात दिन पेट काटकर, आज अच्छा भोजन न करके तुम्हे पीने की सूझी है ! यह भी . '

'सरकार ! मौज-बहार की एक घडी, एक लबे दु:ख-पूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी मे रूखे दिन काट लिये जा सकते है।'

'अच्छा आज दिन-भर तुमने क्या-क्या किया है ?'

'मैंने ?' अच्छा सुनिए—'सवेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुँआँसे कम्बल सा वह भी चारो ओर लिपटा था। हम दोनो मुँह छिपाये पड़े थे।'

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—'अच्छा, तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण ?'

'सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था ? और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुँह धोने मे जो दु:ख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है ! पास मे पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कट-कटी लग रही थी। पराठेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेकता भी रहा। फिर गोमती-किनारे चला गया। घूमते-घूमते अँधेरा हो गया, बूँदे पडने लगी। तब कही भागा और आपके पास आ गया।'

'अच्छा, जो उस दिन तुमने गडरियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमे आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल, भुने हुए भुट्टे के दानो के बदले मोतियो से भर दिया था, वह क्या सच है ?'

'सच ! अरे वह ग़रीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू-थू करने लगी ! .. रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते है। सुना है, श्रीरामचद्र ने भी हनुमानजी से ऐसी ही ..'

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते-हँसते लोट गये। साँस बटोरते हुए सम्हलकर बोले—'और बडप्पन कहते किसे है ? कगाल तो कगाल ! गधी लडकी ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मै सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाईं, सबमे

बड़ी टीस थी। शाहजादों के दुखड़े, रंग-महल की अभागिनी बेगमों निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें हैं; पर ऐसी हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।'

'सरकार! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन! रँगरेलियाँ! दुखियों की दर्द-भरी आहें! रंग-महलों में घुल-घुलकर वाली बेगमें अपने आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी से रोने लगता हूँ। अमीर कंगाल हो जाते हैं। बड़े-बड़े घमंडी चूर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसको पागल-पन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ—सरकार! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता?'

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अँगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा। सहसा नींद से चौंककर ठाकुर साहब ने कहा—

'अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है। वह देखो एक रुपया पड़ा है उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ।'

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका। लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगा।

'तो सूअर! रोता क्यों है? कुँअर साहब ने दो ही लात न लगाई हैं? कुछ गोली तो नहीं मार दी?'—कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था; किंतु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती। अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा—'मधुआ! जा सो रह! नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा! समझा न!'

कुछ और ले आऊँ—सुनता है रे छोकरे! रोना मत, रोयेगा तो पीटूँगा! मुझसे रोने से बडा बैर है। पाजी कही का, मुझे भी रुलाने का...'

शराबी गली के वाहर भागा। उसके हाथ मे एक रुपया था। आने का एक देशी अद्धा और दो आने का चाँप . दो आने की नही-नही आलू-मटर .अच्छा, न सही। चारो आने का मांस ही ले लूंगा, पर यह छोकरा! इसका गढा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या खायगा? ओह, आज तक तो कभी मैने दूसरो के खाने का सोच किया ही नही। तो क्या ले चलूं? पहले-पहल एक अद्धा ही ले लूं!—इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खडा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूलकर मिठाई-पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरे एक रुपये का सामान लेकर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी मे पहुँचकर उसने दोनो की पाँत बालक के सामने सजा दी। उसकी सुगध से बालक के गले मे एक तरह की तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उड़ेलते हुए कहा—नटखट कही का, हँसता है। सोंधी बास नाक मे पहुँची न! ले, खूब ठूँसकर खा लें, और रोया कि पिटा!

दोनो ने बहुत दिन पर मिलनेवाले दो मित्रो की तरह साथ बैठकर भर-पेट खाया। सीली जगह मे सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ लिया। जब उसे नीद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बडाने लगा—सोचा था, आज सात दिन पर भर-पेट पीकर सोऊँगा; लेकिन वह छोटा-सा रोना पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका!

❀ ❀ ❀

एक चितापूर्ण आलोक मे आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर, कोठरी मे बिखरी हुई दारिद्रय की विभूति को देखा और देखा उस घुटनो

से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलो को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता—जिसपर आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यो लेने लगी? इस छोटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है? तब क्या करूँ? कोई काम करूँ? कैसे दोनो का पेट चलेगा? नही, भगा दूँगा इसे—आँख तो खोले!

बालक अँगडाई ले रहा था। उठ बैठा। शराबी ने कहा—'ले, उठ, कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख! तेरा नाम क्या है रे?'

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा—'मधुआ! भला हाथ-मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ! और जाऊँगा कहाँ?'

'आह! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय! कह दूँ कि भाड़ मे जा; किन्तु वह आज तक दुःख की भट्ठी मे जलता ही तो रहा है! तो..., वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला—'ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नही। तू ही इस कोठरी मे रह!'

शराबी घर से निकला। गोमती-किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बाते सोचता आ रहा था, पर कुछ भी सोच न सका। हाथ-मुँह धोने मे लगा। उजली हुई धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गरमी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था, कि किसी ने पुकारा—

'भले आदमी, रहे कहाँ? सालो पर दिखाई पड़े। तुमको खोजते-खोजते मै थक गया।'

शराबी ने चौककर देखा। वह कोई जान-पहचान का तो मालूम होता था, पर कौन है, यह ठीक-ठीक नही जान सका।

उसने फिर कहा—'तुम्ही से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले अपनी सान धरने की कल, नही तो सड़क पर फेक दूँगा। एक ही कोठरी, जिसका मै दो रुपये किराया देता हूँ, उसमें क्या मुझे अपना रखने के लिए नही है?'

'ओ हो! रामजी, तुम हो भाई, मै भूल गया था। तो चलो ही उसे उठा लाता हूँ।' कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छी रही, उसी वेचकर कुछ दिनो तक काम चलेगा।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा शराबी को कल देते हुए उसने कहा—'ले जाओ, किसी तरह मेरा पिण्ड छूटे।'

बहुत दिनों पर आज उस को कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी मे पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बडबड़ाते हुए उसने पूछा—'क्यों रे, तूने कुछ खा लिया कि नही?'

'भर पेट खा चुका हूँ और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।'—कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया। शराबी एक क्षण भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन-ही-मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नही तो और क्या है? चलूँ, फिर लेकर सान देने का काम चलता करूँ। दोनो का पेट भरेगा। वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें किस्सा-कहानी इधर-उधर की कहकर, अपना काम चला ही लेता था। पर अब तो विना कुछ किये घर नही चलने का। जल पीकर बोला—क्यो रे मधुआ, अब तू कहाँ जायगा?'

'कही नही।'

'यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है, कि मै खोद-खोदकर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा?'

'तब कोई काम करना चाहिए।'

'करेगा ?'

'जो कहो।'

'अच्छा, तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए लाया हूँ। चल, आज से तुझे सान सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नही। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न ?'

'कहीं भी रह सकूँगा; पर ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा।'

शराबी ने फिर एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखे दृढ़ निश्चय की सौगंध खा रही थी।

शराबी ने मन-ही-मन कहा—बैठे-बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी! अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगंध लेनी पड़ी।

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा—तू किसे उठायेगा ?

'जिसे कहो।'

'अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?'

'कोई नही पकड़ेगा, चलो भी। मेरे बाप मर गये।'

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनो कोठरी छोड़कर चल पड़े।

इक्केवाला

स्टेशन के बाहर आकर मैंने अपने साथी मनोहरलाल से कहा—कोई इक्का मिल जाय तो अच्छा है—'दस मील का रास्ता है।'

मनोहरलाल बोले—'आइए, इक्के बहुत है। उस तरफ खड़े होते है।'

हम दोनो चले। लगभग दो सौ गज चलने के पश्चात् देखा, तो सामने एक बड़े वृक्ष के नीचे तीन-चार इक्के खड़े दिखाई दिये। एक

इक्का अभी आया था और उस पर से दो आदमी अपना असबाब उतर रहे थे। मनोहरलाल ने पुकारा—'कोई इक्का गगापुर चलेगा ?'

एक इक्केवाला बोला—'आइए सरकार, मै ले चलूँ। कै सवारी है ?

'दो सवारी—गगापुर का क्या लोगे ?'

'जो सब देते है, वही आप भी दे दीजिएगा।'

'आखिर कुछ मालूम तो हो ?'

'दो रुपये का निरख (निर्ख) है।'

'दो रुपये ?—इतना अधेर !'

इसी समय जो लोग अभी आये थे, उनमें और उनके इक्केवाले में झगडा होने लगा। इक्केवाला बोला—'यह अच्छी रही, वहाँ से डेढ रुपया तय हुआ, अब यहाँ बीस ही आने दिखाते है !'

यात्रियो में से एक बोला—'हमने पहले ही कह दिया था कि हम बीस आने से एक पैसा अधिक न देगे।'

'मैने भी तो कहा था, कि डेढ रुपये से एक पैसा कम न लूँगा।'

'कहा होगा, हमने सुना ही नही !'

'हाँ, सुना नही—ऐसी बात आप काहे को सुनेंगे !'

'अच्छा तुम्हे बीस आने मिलेगे—लेना हो तो लो, नही अपना रास्ता देखो।'

इक्केवाला, जो हृष्ट-पुष्ट तथा गौरवर्ण था, अकड़ गया। बोला—'रास्ता देखे, कोई अधेर है ! ऐसे रास्ता देखने लगे, तो बस कमाई कर चुके। बाये हाथ से इधर डेढ़ रुपया रख दीजिए, तब आगे बढिएगा। वहाँ तो बोले, अच्छा जो तुम्हारा रेट होगा, वह देगे, अब यहाँ कहते है, रास्ता देखो—अच्छे मिले !'

हम लोग यह कथोपकथन सुनकर इक्का करना भूल गये और उनकी बाते सुनने लगे। एक यात्री बड़ी गंभीरतापूर्वक बोला—'देखो जी, यदि

तुम भलमनसी से बातें करो, तो दो-चार पैसे हम अधिक दे सकते है, तुम गरीब आदमी हो; लेकिन जो झगड़ा करोगे तो एक पैसा न मिलेगा।'

इक्केवाला किंचित मुस्कराकर बोला—'दो-चार पैसे! ओफ ओह! आप तो बडे दाता मालूम होते है! जब चार पैसे देते हो, तो चार आने ही क्यो नही दे देते?'

'चार आने हमारे पास नही है।'

'नही ह—अच्छी बात है, तो जो आपके पास हो वही दे दीजिए—न हो न दीजिए और जरूरत हो तो एकाध रुपया मैं आपको दे सकता हूँ।'

'तुम बेचारे क्या दोगे, चार-चार पैसे के लिए तो तुम झूठ बोलते हो और बेईमानी करते हो।'

'अरे बाबूजी, लाखो रुपये के लिए तो मैंने बेईमानी की नही—चार पैसे के लिए बेईमानी करूँगा? बेईमानी करता तो इस समय इक्का न हाकता होता। खैर, आपको जो देना हो दे दीजिए—नही जाइए—मैंने किराया भर पाया।'

उन्होंने बीस आने निकालकर दिये। इक्केवाले ने चुपचाप ले लिये।

उस इक्केवाले का आकार-प्रकार, उसकी बातचीत से मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य इक्केवालों की तरह यह साधारण आदमी नहीं है। इसमें कुछ विशेषता अवश्य है; अतएव मैंने सोचा कि यदि हो सके, तो गंगापुर इसी इक्के पर चलना चाहिए। यह सोचकर मैंने उससे पूछा—'क्यो भाई गगापुर चलोगे?'

वह बोला—'हाँ! हाँ! आइए!'

'क्या लोगे?'

'वही डेढ़ रुपया!'

मैंने सोचा, अन्य इक्केवाले तो दो रुपये मागते थे, यह डेढ़ रुपया कहता है, आदमी सच्चा मालूम होता है। यह सोचकर मैंने कहा—'अच्छी बात है, चलो डेढ़ रुपया देंगे।'

हम दोनो सवार होकर चले। थोड़ी दूर चलने पर मैंने पूछा—'वे दोनो कौन थे?' इक्केवाले ने कहा—'नारायण जाने कौन थे? परदेशी मालूम होते है, लेकिन परले-सिरे के झूठे और बेईमान! चार आने के लिए प्राण तजे दे रहे थे।'

मैंने पूछा—'तो सचमुच तुमसे डेढ रुपया ही तय हुआ था?'

'और नही क्या आप झूठ समझते है? बाबूजी, यह पेशा ही बदनाम है, आपका कोई कसूर नही। इक्के, टॉगेवाले सदा झूठे और बेईमान समझे जाते है। और होते भी है—अधिकतर तो ऐसे ही होते है। इन्हे चाहे आप रुपये की जगह सवा रुपया दीजिए, तब भी संतुष्ट नही होते।'

मैंने पूछा—'तुम कौन जाति हो?'

'मै? मै तो सरकार वैश्य हूँ।'

'अच्छा! वैश्य होकर इक्का हॉकते हो?'

'क्यो सरकार, इक्का हाँकना कोई बुरा काम तो है नही?'

'नही, मेरा मतलब यह नही है कि इक्का हाँकना कोई बुरा काम है। मैंने इसलिए कहा कि वैश्य तो बहुधा व्यापार करते है।'

'यह भी तो व्यापार ही है।'

'हॉ, है तो व्यापार ही।'

मै मन-ही-मन अपनी इस बेतुकी बात पर लज्जित हुआ; अतएव मैंने प्रसग बदलने के लिए पूछा—कितने दिनो से यह काम करते हो?

'दो बरस हो गये।'

'इसके पहले क्या करते थे?'

यह सुनकर इक्केवाला गभीर होकर बोला—'क्या बताऊँ, क्या करता था?'

उसकी इस बात से तथा यात्रियों से उसने जो बातें कही थी, उनका तारतम्य मिलाकर मैंने सोचा—इस व्यक्ति का जीवन रहस्यमय मालूम होता है। यह सोचकर मैंने उससे पूछा—'कोई हर्ज न समझो तो बताओ।'

'हर्ज तो कोई नही है बाबूजी! पर मेरी बात पर लोगो को विश्वास नही होता। इक्केवाले बहुधा परले-सिरे के गप्पी समझे जाते है; इसलिए मैं किसी को अपना हाल सुनाता नही।'

'खैर, मैं उन आदमियो मे नही हूँ, यह तुम विश्वास रखो।'

'अच्छी बात है सुनिए—'

(२)

'मैं अगरवाला बनिया हूँ। मेरा नाम श्यामलाल है। मेरा जन्म-स्थान मैनपुरी है। मेरे पिता व्यापार करते थे। जिस समय मेरे पिता की मृत्यु हुई, उस समय मेरी उम्र पन्द्रह साल की थी। पिता के मरने पर घर-गृहस्थी का सारा भार मेरे ऊपर पडा। मैंने एक वर्ष तक काम-काज चलाया, पर मुझे व्यापार का अनुभव न था, इस कारण घाटा हुआ और मेरा सब काम बिगड गया। अन्त को और कोई उपाय न देख मैंने वही एक धनी आदमी के यहाँ नौकरी कर ली। उस समय मेरे परिवार मे मेरी माता और एक छोटी बहन थी। जिसके यहाँ मैंने नौकरी की थी, वह तो थे मालदार, परन्तु बड़े कजूस थे। ऊपर से देखने मे वह एक मामूली हैसियत के आदमी दिखाई पडते थे; परन्तु लोग कहते थे कि उनके पास एक लाख के लगभग नकद रुपया है। उस समय मैंने लोगो की बात पर विश्वास नही किया था; क्योकि घर की हालत देखने से किसी को यह विश्वास नही हो सकता था कि उनके पास इतना रुपया होगा। उनकी उम्र चालीस से ऊपर थी। उन्होने दूसरी शादी की थी और उनकी पत्नी की उम्र बीस वर्ष के लगभग थी। पहली स्त्री से उनके एक लडका था। वह जवान था और उसका विवाह इत्यादि सब हो चुका था। उसका नाम शिवचरणलाल था। पहले तो वह अपने पिता के पास ही रहता था; परतु जब पिता ने दूसरा विवाह किया, तो वह नाराज होकर अपनी स्त्री सहित फर्रुखाबाद चला गया। वहाँ उसने एक दूकान कर ली और वही रहने लगा।'

'उन दिनो मुझे कसरत करने का बडा शौक था, इसलिए मेरा वदन बहुत अच्छा बना हुआ था। कुछ दिनो पश्चात् मेरी मालकिन मेरी बहुत ख़ातिर करने लगी। खूब मेवा-मिठाई खिलाती थीं और महीने मे दस-बीस रुपये नकद दे देती थी। इस कारण दिन बडी अच्छी तरह कटने लगे। मै मालकिन के ख़ातिर करने का असली मतलब उस समय नही समझा। मैंने जो समझा, वह यह था कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर तथा मुझे गरीब समझकर वह ऐसा करती है। आखिर जब एक दिन उन्होने मुझे एकात मे बुलाकर छेड-छाड की, तब मेरी आँखे खुली। मुझे आरम्भ से ही इन कामो से नफ़रत्त थी। मै इन बातों को जानता भी नही था। न कभी ऐसी सगति ही मे रहा था जिसमे इन बातो का ज्ञान प्राप्त होता। मैं उस समय जो जानता था वह यह था कि आदमी को खूब कसरत करना चाहिए और स्त्रियो से बचना चाहिए। जब मालकिन ने छेड-छाड की, तो मुझे उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होने के बदले भय मालूम हुआ। मेरा कलेजा धडकने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, कि वह एक चुडैल है और मुझे भक्षण करना चाहती है।'

इक्केवाले की इस बात पर मेरे साथी मनोहरलाल बहुत हँसे। बोले—'तुम तो बिल्कुल बुद्धू थे जी!'

श्यामलाल बोला—'अब जो समझिए, परन्तु बात ऐसी ही थी। खैर, मै अपना हाथ छुडाकर उनके सामने से भाग आया। अब मुझे उनके सामने जाते डर मालूम होने लगा। यही खटका लगा रहता था, कि कही किसी दिन फिर न पकड ले। तीन-चार दिन के बाद वही हुआ। उन्होने अवसर पाकर फिर मुझे घेरा। उस दिन मैने उनसे साफ-साफ़ कह दिया, कि यदि वह ऐसी हरकत करेगी, तो मै मालिक से कह दूंगा। बस, उसी दिन से मेरी ख़ातिर बद हो गई। केवल ख़ातिर बद रह जाती, वहाँ तक गनीमत थी; परन्तु अब उन्होने मुझे तग करना आरभ किया। बात-बात पर डाँटती थी। कभी मालिक से शिकायत कर देती थी। आखिर जब एक

दिन मालिक ने मुझे मालिकन के कहने से बहुत डाँटा, तो मैंने उन्हे अलग ले जाकर कहा—लालाजी, मेरा हिसाब कर दीजिए, मैं अब आपके यहाँ नौकरी नही करूँगा। लालाजी लाल-पीली आँखे करके बोले—एक तो कसूर करता है और उसपर हिसाब माँगता है? मुझे भी तैश आ गया। मैंने कहा—कसूर किस ससुरे ने किया है? लालाजी बोले—तो क्या मालकिन झूठ कहती है? मैंने कहा—बिल्कुल झूठ! लालाजी ने कहा—तेरे से उनकी शत्रुता है क्या? मैंने कहा—हाँ शत्रुता है। उन्होने पूछा—क्यो? मैंने कहा—अब आपसे क्या बताऊँ। आप उसे भी झूठ मानेगे। इसलिए सबसे अच्छी बात यही है कि मेरा हिसाब कर दीजिए। मेरी बात सुनकर लाला के पेट मे खलबली मची। उन्होने कहा—पहले यह बता कि बात क्या है? मैंने कहा—उसके कहने से कोई फायदा नही, आप मेरा हिसाब दे दीजिए। परन्तु लाला मेरे पीछे पड गये। मैंने विवश होकर सब हाल बता दिया। मुझे भय था, कि लाला को मेरी बात पर विश्वास न होगा, पर ऐसा नही हुआ। लाला ने मेरी पीठ पर हाथ फेरकर कहा—शाबास श्यामलाल, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम आनन्द से रहो, तुम्हारी तरफ कोई आँख उठाकर नही देख सकेगा। बस उस दिन से मैं निर्द्वन्द्व हो गया। अब अधिकतर मैं मालिक के पास बाहर ही रहने लगा, भीतर कम जाता था। उसके पश्चात् भी मालकिन ने मेरे निकलवाने के लिए चेष्टा की, पर लाला ने उनकी एक न सुनी। आखिर वह भी हारकर बैठ रही।'

'इस प्रकार एक वर्ष और बीता। इस बीच मे लाला के एक रिश्तेदार-जो उनके चचेरे भाई होते थे—बहुत आने-जाने लगे। उनकी उम्र पच्चीस-छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। शरीर के मोटे-ताजे और तन्दुरुस्त आदमी थे। पहले तो मुझे उनका आना-जाना कुछ नही खटका, पर जब उनका आना-जाना हद से अधिक बढ गया और मैंने देखा, कि वह मालकिन के पास घण्टो बैठे रहते है तो मुझे सन्देह हुआ, कि हो न हो दाल मे कुछ काला अवश्य है। लालाजी अधिकतर दूकान मे रहने के कारण यह बात न जानते थे।

घर का कहार भी मालकिन से मिला हुआ मालूम होता था, इसलिए वह भी चुप्पी साधे था। एक मैं ही ऐसा था, जिसके द्वारा लाला को यह खबर मिल सकती थी। अंत में मैंने इस रहस्य का पता लगाने पर कमर बाँधी और एक दिन अपनी आँखों उनकी पापमयी लीला देखी। बस उसी दिन मैंने लाला को खबर कर दी। लाला उस बात को चुपचाप पी गये। आठ-दस रोज बाद लाला ने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, तेरी बात ठीक निकली, आज मैंने भी देखा। जिस दिन तूने कहा था, उसी दिन से मैं इसकी टोह में था—आज तेरी बात की सत्यता प्रमाणित हो गई। अब बता क्या करना चाहिए? मैंने कहा—मैं क्या बताऊँ, आप जो उचित समझें, करें।'

'लाला ने पूछा—तेरी क्या राय है? मैंने इस उम्र में विवाह करके बड़ी भूल की; पर अब इसका उपाय क्या है? मैंने कहा—अपने भाई साहब का आना-जाना बंद कर दीजिए, यही उपाय है और हो ही क्या सकता है? लाला ने सोचकर कहा—हाँ, यही ठीक है। जी में तो आता है कि इस औरत को निकाल बाहर करूँ, पर इसमें बड़ी बदनामी होगी। लोग हँसेंगे कि पहले तो विवाह किया, फिर निकाल दिया।'

'मैंने कहा—हाँ, यह तो आपका कहना ठीक है। बस, उनका आना जाना बन्द कर दीजिए, अतएव उसी दिन से यह हुकुम लग गया, कि लाला की अनुपस्थिति में बाहर का कोई आदमी—चाहे रिश्तेदार हो, चाहे कोई हो—अंदर न जाने पाये। और यह काम मेरे सुपुर्द किया गया। उस दिन से मैंने उन्हें नहीं घँसने दिया। इसपर उन्होंने मुझे प्रलोभन भी दिये, धमकी भी दी, पर मैंने एक न सुनी। मालकिन ने भी बहुत कुछ कहा-सुना, खुशामद की, पर मैं जरा भी न पसीजा। कहरवा भी बोला—तुमसे क्या मतलब है, जो होता है, होने दो। मैंने उससे कहा—सुनता है बे, तू तो पक्का नमकहराम है, जिसका नमक खाता है, उसी के साथ दगा करता है। खैरियत इसी में है कि चुप रह, नहीं तो तुझे भी निकाल बाहर करूँगा।'

'यह सुनकर कहारराम चुप हो गये।'

'थोड़े दिन बाद लाला के उन रिश्तेदार ने आना-जाना बिल्कुल बद कर दिया। अब वह लाला के पास भी नही आते थे। मैंने भी सोचा, चलो अच्छा हुआ, आँख फूटी पीर गई।'

'इसके छ: महीने बाद एक दिन लाला को हैजा हो गया। मैंने बहुत दौड-धूप की, इलाज इत्यादि कराया; पर कोई फायदा न हुआ। लाला जी समझ गये कि अन्त समय निकट है; अतएव उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, मैं तुझे अपना नौकर नही, पुत्र समझता हूँ; इसलिए मैं अपनी कोठरी की ताली तुझे देता हूँ। मेरे मरने पर ताली मेरे लडके को दे देना और जब तक वह न आ जाय, तब तक किसी को कोठरी न खोलने देना। बस, तुझसे मैं इतनी अंतिम सेवा चाहता हूँ।'

'मैंने कहा—ऐसा ही होगा, चाहे मेरे प्राण ही क्यो न चले जायँ, पर मैं इसमे अन्तर न पडने दूँगा। इसके पश्चात् उन्होंने मुझे पाँच हजार रुपये नकद दिये और बोले—यह लो, मै तुम्हे देता हूँ। मैं लेता न था। पर उन्होने कहा—तू यदि न लेगा, तो मुझे दुःख होगा, अतएव मैंने ले लिये। इसके चार घंटे बाद उनका देहान्त हो गया। उनके लडके को उनके मरने के तीन घंटे पहले तार दे दिया गया था। उनके मरने के पाँच घंटे बाद वह मैनपुरी पहुँचा था। उनका देहान्त रात को आठ बजे हुआ और वह रात के दो बजे के निकट पहुँचा था। लाला के मरने के बाद उनकी स्त्री ने मुझसे कहा—कोठरी की ताली लाओ। मैंने कहा—ताली तो लाला शिवचरणलाल के हाथ मे देने को कह गये है, मै उन्ही को दूँगा। उन्होंने कहा—अरे मूर्ख, इससे तुझे क्या मिलेगा। कोठरी खोलकर रुपया निकाल ले—मुझे मत दे, तू ले ले, मै भी तेरे साथ रहूँगी, जहाँ तू चलेगा, तेरे साथ चलूँगी। मैंने कहा—यह मुझसे न होगा। मै तुम्हे ले जाकर रखूँगा कहाँ? दूसरे तुम मेरे उस मालिक की स्त्री हो, जो मुझे

अपने पुत्र के समान मानता था। मुझसे यह न होगा, कि तुम्हे अपनी स्त्री बनाकर रखूँ।'

'बाबूजी, एक घंटे तक उसने मुझे समझाया, रोई भी, हाथ भी जोड़े; परन्तु मैंने एक न मानी। आखिर उसने अन्य उपाय न देख अपने देवर अर्थात् उन्ही को बुलाया, जिनका आना-जाना मैंने बन्द कराया था। उन्होंने आते ही बड़ा रुआब झाड़ा। मुझे पुलिस मे देने की धमकी दी, पर मैं इससे भयभीत न हुआ। तब वह ताला तोड़ने पर आमादा हुए। मैं कोठरी के द्वार पर एक मोटा डंडा लेकर बैठ गया और मैंने उनसे कह दिया कि जो कोई ताला तोड़ने आयेगा, पहले मैं उसका सिर तोड़ूँगा, इसके बाद जो होगा देखा जायगा। बस फिर उनका साहस न हुआ। इस रगड़े-झगड़े मे रात के दो बज गये और शिवचरणलाल आ गये। मैंने उनको ताली दे दी और सब हाल बता दिया।

'बाबूजी, जब कोठरी खोली गई, तो उसमे साठ हजार रुपये नकद निकले। इन रुपयो का हाल लाला के अतिरिक्त और किसी को भी मालूम न था। यदि मैं मालकिन की बात मानकर बीस-पच्चीस हजार रुपये भी निकाल लेता, तो किसी को भी संदेह न होता, पर मेरे मन में इस बात का विचार एक क्षण के लिए भी पैदा न हुआ। मेरी माँ रोज रामायण पढ़कर मुझे सुनाया करती थी, और मुझे यही समझाया करती थी कि—बेटा, पाप और बेईमानी से सदा बचना, इससे तुझे कभी दुःख न होगा। उनकी यह बात मेरे जी मे बसी हुई थी और इसीलिए मैं बच गया। उसके बाद शिव-चरणलाल ने भी मुझे एक हजार रुपया दिया। साथ ही उन्होंने यह कहा कि तुम मेरे पास रहो; पर लाला के मरने से और जो अनुभव मुझे हुए थे, उनके कारण मैंने उनके यहाँ रहना उचित न समझा। लाला की तेरही होने के बाद मैंने उनकी नौकरी छोड़ दी। छः हजार रुपये मे से दो हजार मैंने अपनी बहन के ब्याह मे खर्च किये और दो हजार अपने ब्याह मे खर्च किये। एक हजार लगाकर एक दूकान की और हजार बचाकर रखा;

पर दूकान मे फिर घाटा हुआ। तब मैंने मैनपुरी छोड दी और इधर चला आया। नौकरी करने की इच्छा नही थी, इसलिए मैंने इक्का-घोडा खरीद लिया और किराये पर चलाने लगा—तबसे बराबर यही काम कर रहा हूँ। इसमें मुझे खाने-भर को मिल जाता है। अपने आनन्द से रहता हूँ, न किसी के लेने मे हूँ, न देने मे। अब बताइए, वह बाबू कहते थे कि चार आने पैसे के लिए मैं बेईमानी करता हूँ। अब मैं उनसे क्या कहता। यह तो दुनिया है, जो जिसकी समझ मे आता है, कहता है। मैं भी सब सुन लेता हूँ। इक्केवाले बदनाम हैं, इसलिए मुझे भी ये बाते सुननी पडती है।'

श्यामलाल की आत्मकहानी सुनकर मैं कुछ देर तक स्तब्ध बैठा रहा। इसके पश्चात् मैंने कहा—'भाई, तुम तो दर्शनीय आदमी हो, तुम्हारे तो चरण छूने को जी चाहता है।'

श्यामलाल हँसकर बोला—'अजी बाबूजी, क्यो काँटो मे घसीटते हो? मेरे चरण और आप छूयें—राम! राम! मैं कोई साधु थोडा ही हूँ।'

मैंने कहा—'और साधु कैसे होते है; उनके कोई सुर्खाब का पर तो लगा होता नही। सच्चे साधु तो तुम्ही हो।' यह सुनकर श्यामलाल हँसने लगा। इसी समय गगापुर आ गया और हमलोग इक्के से उतरकर अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दिये।

रास्ते मे मैंने मनोहरलाल से कहा—'इस ससार मे अनेको लाल गुदडी मे छिपे पडे है। उन्हे कोई जानता तक नही!'

मनोहरलाल—'जी हाँ! और नामधारी ढोंगी महात्मा ईश्वर की तरह पूजे जाते है।'

❀ ❀ ❀

बात बहुत पुरानी हो गई है, पता नही, महात्मा श्यामलाल अब भी जीवित है या नही, परंतु अब भी जब कभी मुझे उनका स्मरण हो आता है तो मैं उनकी काल्पनिक मूर्ति के चरणो मे अपना मस्तक नत कर देता हूँ।

एथेंस का सत्यार्थी

यह उस बीते हुए युग की कहानी है, जब यूनान ऐश्वर्य और कला के शिखर पर था और ससार की सर्वोत्तम सतान यूनान मे उत्पन्न होती थी। रात का समय था। काव्य और कला को कभी न भूलनेवाली प्राचीन एथेंस पर अंधकार छाया हुआ था। चारों तरफ सन्नाटा था, चारो निस्तब्धता थी—सब बाजार खाली थे, सब गलियाँ निर्जन थी और यह सुन्दर और आबाद नगरी रात के अँधेरे मे दूर से इस तरह दिखाई देती थी, जैसे किसी जंगल मे धुँधली-सी अपूर्ण छाया का पडाव पड़ा हो।

पूरी नगरी पूरा विश्राम कर रही थी। उसके विद्वान् विलासी बेटे अपनी-अपनी शय्या पर बेसुध पड़े थे। रग-शालाएँ खाली हो चुकी थी, विलास-भवनो के दीपक बुझा दिये गये थे और द्वारपालो की आँखो की पलके नींद के लगातार आक्रमणों के सामने झुकी जाती थी; परन्तु एक नवयुवक की आँखे नीद की शाति और शाति की नीद से वचित थीं।

यह देवकुलीश एक विद्यार्थी था, जिसकी आत्मा सत्य-दर्शन की प्यासी थी। वह एक बहुत बड़े धनवान् का बेटा था, उसकी सम्पत्ति उसके लिए हर तरह का विलास खरीद सकती थी, वह अत्यन्त मनोहर था, यूनान-माता की सबसे सुन्दर बेटियाँ उसके प्रेम मे पागल हो रही थी। वह बहुत उच्चकोटि का तत्त्व-वेत्ता था। उसकी साधारण युक्तियाँ भी विद्यालय के अध्यापको की पहुँच से बाहर थी, परतु उसे इसपर भी शाति न थी। वह सत्यार्थी था। वह सत्य की खोज मे अपने आपको मिटा देने पर तुला हुआ था। वह इस रास्ते मे अपना सर्वस्व निछावर कर देने को तैयार था। मर्त्य-लोक की नाशवान् खुशियाँ उसके लिए अर्थ-हीन वस्तुएँ थी। यौवन और सौन्दर्य की सजीव मूर्तियो मे उसके लिए कोई आकर्षण न था। वह चाहता था, किसी तरह

सत्य को एक बार उसके वास्तविक रूप में देख ले। वह सत्य को बेपरदा, नंगा देखना चाहता था। ऐसा नही जैसा वह दिखाई देता है, बल्कि ऐसा जैसा वह वास्तव मे है। वह अपनी इस मनोरथ सिद्धि के लिए सब कुछ करने को तैयार था।

देवकुलीश रात-दिन पढता था।

पढता था और सोचता था। सोचता था और पढ़ता था, मगर उसके स्वास्थ्य, चिंतन और मनन से उसके प्यासे हृदय की प्यास मिटती न थी, बढती जाती थी। सत्य का रोगी चिकित्सा से और ज्यादा बीमार होता जाता था।

(२)

विद्यालय के आँगन मे विशाल एक ऊँचा चबूतरा था, जिसपर पता नही कब से मिनर्वा, ज्ञान और विवेक की देवी, सगमरमर के वस्त्र पहने खड़ी थी। देवकुलीश पत्थर की इस मूर्ति के बरफ-समान पैरो के निकट आकर घटो बैठा रहता और संसार के रहस्य पर चितन किया करता था। यहाँ तक कि उसके मित्रो और सहपाठियो ने समझ लिया कि इसके मस्तिष्क मे विकार उत्पन्न हो गया है। वे उसकी इस शोचनीय (?) दशा को देखते थे और कुढते थे।

उस रात भी देवकुलीश देवी के पैरो के निकट बैठा था और रो रहा था—कृपा कर! ऐ विद्या और विज्ञान की सबसे बडी देवी, कृपा कर! मेरे मन की अभिलाषा पूरी कर। मैं कई वर्षो से तेरी पूजा कर रहा हूँ। मैंने कई राते तेरे पैरो को अपने आँसुओ से धोने मे गुज़ार दी है। मैंने कई दिन केवल तेरे ध्यान मे बिता दिये हैं। मेरी प्रार्थना के शब्द सुन और उन्हे स्वीकार कर!

देवकुलीश यह कहकर खडा हो गया और देवी के तेज-पूर्ण मुँह की तरफ देखने लगा, मगर वह उसी तरह चुपचाप थी।

इतने मे चद्रमा आकाश में उदय हुआ। उसके सुवर्ण और सुशीतल प्रकाश में देवी की मूर्ति और भी मनोहर दिखाई देने लगी।

अब देवकुलीश फिर मूर्ति के चरणो मे बैठा था और फिर उसी तरह बालको के सदृश रो-रोकर प्रार्थना कर रहा था, मानो वह सगमरमर की मूर्ति न थी, इस दुनिया की जीती-जागती स्त्री थी, जो सुनती भी है, जवाब भी देती है। बुद्धिमान् देवकुलीश ने पागलपन के आवेश मे कहा—आज की रात फैसले की रात है। ऐ ज्ञान और विवेक की रानी! तूने मेरे दिल में जिज्ञासा की आग सुलगाई है, तू ही उसे सत्य के शीतल जल से शात कर सकती है। सत्य कहाँ है?—अजर, अमर, अटल सत्य! वह सत्य जिसपर बुद्धिमान् लोग शास्त्रार्थ करते है, जिसका पंडित चितन करते है, जिसे लोग एकात मे तलाश करते हैं, मदिरो मे ढूंढते है, जिसके लिए दूर-दूर भटकते है। मै वह उच्च कोटि का सत्य देखने का अभिलाषी हूँ। नही तो मै चाँद की उज्वल चॉदनी के सामने तेरे पैरो की सौगध खाकर कहता हूँ, कि अपने निरर्थक जीवन को यही, इसी जगह समाप्त कर दूँगा। मुझे सत्यहीन जीवन की कोई आवश्यकता नही।

यह कहकर देवकुलीश ने अपनी चादर के अदर से एक कटार निकाली और आत्महत्या करने को तैयार हो गया।

एकाएक सफेद पत्थर की मूर्ति सजीव हो गई। उसने देवकुलीश के हाथ से कटार छीन ली, उसे ऑगन के एक अँधेरे कोने मे फेक दिया और कहा—देवकुलीश!

देवीकुलीश काँपता हुआ खडा हो गया और आशा, आनन्द और सदेह की दृष्टि से देवी की ओर देखने लगा। क्या यह सच है?

हाँ, यह सच था, देवी के होठ सचमुच हिल रहे थे—देवकुलीश! देवकुलीश!—देवकुलीश देवी का एक-एक शब्द पूरे ध्यान से सुन रहा था।

देवकुलीश ! मौत का मार्ग अँधेरा है । तू मेरा पुजारी, मेरी आँखो के सामने इस मार्ग पर नही जा सकता। मेरे लिए असह्य है कि मेरे सामने कोई आत्म-हत्या कर जाय। बोल, क्या माँगता है ? मैं तेरी हरएक मनोकामना पूरी करने को तैयार हूँ।

देवकुलीश का दिल सफलता के आनन्द से धडक रहा था। उसके मुँह से शब्द न निकलते थे। वह देवी के पैरो के निकट बैठ गया, और श्रद्धाभाव से बोला—पवित्र देवी ! मैं सत्य को उसके अपने असली स्वरूप मे देखना चाहता हूँ। नगा, बेपरदा, खुला सत्य। और कुछ नही, बस सत्य !

तू सत्य को जानना चाहता है ?—देवी के होठो से आवाज आई—तू आप सत्य है। यह आँगन भी सत्य है। मैं सत्य हूँ। आँखे खोल, सत्य दुनिया के चप्पे-चप्पे मे मौजूद है।

देवकुलीश—मगर उस पर परदे पडे हुए है।

देवी—विवेक की आँख उन परदो के अदर का दृश्य भी देख सकती है।

देवकुलीश—पवित्र माता ! मैं सत्य को विवेक से नही, आँखो से देखना चाहता हूँ। मैं सोचकर नही देखना चाहता, देखकर सोचना चाहता हूँ।

देवी ने अपना पत्थर का सफेद ठडा, भारी हाथ देवकुलीश के कधे पर रख दिया और मीठे स्वर मे बोली—बेपरदा, नगा सत्य आज तक दुनिया के किसी बेटे ने नही देखा, न देवताओ ने किसी मनुष्य को यह वरदान दिया है। तू अन्न का कीडा है, तेरी आँखो मे यह दृश्य देखने की शक्ति कहाँ ? मेरा परामर्श है, यह ख्याल छोड दे और अपने लिए कोई और वस्तु माग, मैं अभी, इसी जगह दूँगी।

देवकुलीश—यूनान की सबसे बडी देवी ! मैं केवल नंगा सत्य देखना चाहता हूँ और कुछ नही चाहता।

देवी—मगर इसका मूल्य...

देवकुलीश—जो कुछ तू मांगे।

देवी—धन, दौलत, सौन्दर्य यह सब तुझसे छूट जायेंगे। तुझे दुनिया को चाँद और सूरज के प्रकाश से भी वंचित करना होगा इस यज्ञ में तुझे अपने जीवन की भी आहुति देनी पड़े। बोल! क्या भी तू सत्य का नगा रूप देखना चाहता है?

देवकुलीश—मुझे सब कुछ स्वीकार है।

देवी ने सिर झुका लिया।

देवकुलीश—परमेश्वर की सृष्टि मे ऐसी कोई वस्तु नही, जो मैं इसके लिए न त्याग सकूँ।

देवी ने फिर सिर उठाया और मुस्कराकर कहा—बहुत अच्छा! तू सत्य को देख लेगा, तुझे सत्य दिखा दिया जायगा, सत्य का नगा रूप तेरे सामने होगा, परन्तु एक बार नहीं, धीरे-धीरे चल! आज सत्य का एक परदा उठा, बाकी एक वर्ष के बाद!

(३)

यह कहते-कहते देवी ने अपनी सफेद पत्थर की चादर उतारकर चबूतरे पर रख दी और देवकुलीश को गोद मे उठा लिया। देखते-देखते देवी के दोनों कंधो पर परियों के से दो पर निकल आये। देवी ने पर खोले, और हवा में उड़ने लगी। पहले शहर, मन्दिरो के कलश, पर्वत, फिर चाँद, तारे, बादल सब नीचे रह गये। देवी देवकुलीश को लिये आकाश मे उड़ी जा रही थी। थोड़ी देर बाद उसने देवकुलीश को बादलों के एक पहाड़ पर खड़ा कर दिया। देवकुलीश ने देखा, पृथ्वी उसके पाँव तले बहुत दूर, बहुत नीचे एक-छोटे-से तारे के समान टिमटिमा रही है, और थी वह यह दुनिया, जिसको वह इतना बड़ा समझ रहा था; मगर देवकुलीश का ध्यान इस ओर न था। उसने अपने पास छाया मे छिपी हुई एक धुँधली-सी चीज देखी, और देवी से पूछा—यह क्या है?

देवी—यही सत्य है। यह छिपकर यहाँ रहता है, यही से तेरी ओर अनगिनत दूसरी दुनियाओ को अपनी दिव्य-ज्योति भेजता है। इसी के धुँधले प्रकाश मे बैठकर सयाने लोग दुनिया की पहेलियाँ हल करते है, और गुरु अपने शिष्यों को जीवन की शिक्षा देते है। यही प्रकाश सृष्टि का सूरज है, यही ज्योति मानव-चरित्र का आदर्श है। तू कहेगा, यह तो कुछ ज्यादा प्रकाशमान् नही, परन्तु देवकुलीश! तेरे शहर के निकट जो नदी बहती है, यदि उसकी सारी रेत का एक-एक कण एक-एक सूरज बन जाय, तब भी उसमे इतना प्रकाश न होगा, जितना इस पहाड की छाया मे है; मगर वह परदो मे छिपा हुआ है। चल, आगे बढ और इसका एक परदा फाड दे।

देवकुलीश ने एक परदा फाड़ दिया। इसके साथ ही उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे ससार मे एक नवीन प्रकार का प्रकाश फैल गया है। सच की छाया अब पहले से ज्यादा साफ और चमकदार थी। देवी देवकुलीश को फिर एथेंस मे उडा लाई और अपनी सगमरमर की चादर ओढ़कर फिर उसी चबूतरे पर उसी तरह चुपचाप खडी हो गई।

अब देवकुलीश की दृष्टि मे चाँदी और सोने का कोई मूल्य न था। वह लोगो को दोलत के पीछे भागते देखता, तो उसे आश्चर्य होता था। वह चाँदी को सफेद लोहा, और सोने को पीला लोहा कहता था, और इनकी प्राप्ति के लिए फिर अपना परिश्रम नष्ट न करता था। उसे पढने की धुन थी, दिन रात पढता रहता था। उसके बाप ने उसका साधु-स्वभाव देख कह दिया, कि इसे मेरी जायदाद मे से कुछ न मिलेगा, परन्तु देवकुलीश को इसकी जरा भी चिंता न थी। उसके मित्र-संबधी कहते—देवकुलीश! यह आयु जवानी और गर्म खून की है। सफेद बालो और झुकी हुई कमर का जमाना शुरू होने से पहले-पहल कुछ जमा कर ले। नही फिर बाद मे पछतायेगा।

देवकुलीश उनकी तरफ अद्भुत दृष्टि से देखता और कहता क्या कह रहे हो, मैं कुछ नही समझा।

एथेस के एक वहुत अमीर की कुँआरी वेटी अव भी देवकुलीश मोटी-मोटी काली आँखो की दीवानी थी। वह देवकुलीश की इस दशा को देखती और कुढती थी। देवकुलीश के खाने-पीने का प्रबन्ध वही करती थी, वर्ना वह भूखा-प्यासा मर जाता।

इसी तरह एक साल के तीन सौ पैंसठ दिन पूरे हो गये। रात समय था, एथेंस पर फिर अधकारपूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। देवकुलीश ने फिर देवी के पैरो पर सिर झुकाया। देवी उसे फिर बादलो के पहाड ले गई और देवकुलीश ने सत्य का दूसरा परदा फाड दिया। इस बार सत्य का प्रकाश और भी साफ हो गया। देवकुलीश ने उसे देखा और उस आँखो को वह ज्ञानचक्षु मिल गये, जो यौवन और सुकुमारता के लाल लहू के पीछे छिपे हुए वुढापे की एक-एक झुर्री को देख सकते है। फिर वह अपनी वनावट और अविद्या की दुनिया को वापस चला आया। देवी फिर सगमरमर का वुत बनकर अपनी जगह पर खडी हो गई।

(४)

एक दिन उसके मित्र ने कहा—देवकुलीश ! आज यूनान की सब कुँआरी लडकियाँ एथेंस मे जमा है और आज यूनान की सबसे सुन्दरी युवती को सौदर्य का पहला इनाम दिया जायगा। क्या तू भी चलेगा ?

देवकुलीश ने उसकी ओर मुस्कराकर देखा और कहा—सत्य वहाँ नही है।

दूसरे दिन एक अध्यापक ने कहा—आज यूनान के सारे समझदार लोग विद्यालय मे जमा है। क्या तुम उनसे मिलोगे ?

देवकुलीश ने ठडी आह भरकर जवाव दिया—सत्य वहाँ भी नही है।

तीसरे दिन एक महत ने कहा—आज चाँददेवी के वडे मंदिर में देवताओ की पूजा होगी। क्या तुम भी आओगे ?

देवकुलीश ने लबी आह खीची और कहा—सत्य वहाँ भी नही है।

और इस तरह इस सत्यार्थी ने जवानी ही मे जवानी के सारे प्रलोभनो पर विजय प्राप्त कर ली। अब वह पूरा महत था, मगर वह एथेस के किसी मेले मे नज़र न आता था, उसकी आवाज़ किसी सभा मे न सुनाई देती थी।

सत्यार्थी साल भर एकात मे पढता रहता और इसके बाद बादलो के पहाड पर जाकर सत्य का एक परदा फाड़ आता था। इसी तरह कई वर्ष बीत गये। उसका ज्ञान दिन-पर-दिन बढता गया; मगर उसकी आँखे अदर धँस गई थी, कमर झुक चुकी थी, सिर के सारे बाल सफेद हो गये थे। उसने सत्य की खोज मे अपनी जवानी बुढापे की भेट कर दी थी, मगर उसे इसका दुख न था, क्योकि वह जवानी और बुढापे दोनो की सत्ता से परिचित हो चुका था।

और लोग यह समझते थे कि देवकुलीश ने अपने लिए अपनी कोठरी को समाधि बना लिया है।

(५)

आखिर वह प्यारी रात आ गई, जिसकी प्रतीक्षा मे देवकुलीश को अपने जीवन का एक-एक क्षण एक-एक वर्ष, एक-एक शताब्दी से भी लम्बा मालूम होता था।

आज सत्य के मुँह से अंतिम परदा उठेगा। आज वह सत्य को नगा, बे-परदा देखेगा जिसे संसार के किसी नश्वर बेटे ने आज तक नही देखा। आज उसके जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी हो जायगी।

आधी रात को उसे विवेक और विज्ञान की देवी ने अतिम बार गोद में उठाया, और बादलो के पहाड पर ले जाकर खडा कर दिया।

देवकुलीश ने सत्य की ओर अधीर होकर देखा।

देवी ने कहा—देवकुलीश! देख, इसका प्रकाश कैसा साफ, कैसा तेज़ है। आज तक तूने इसके जितने परदे उतारे है, वे इसके परदे न थे, तेरी

बुद्धि के परदे थे। सत्य का एक ही परदा है, आगे बढ और उसे उतार दे; परतु अगर तू चाहे, तो अब भी लौट चल। मै तुझे सातों समुद्रो के मोती और दुनियाँ का सारा सोना देने को तैयार हूँ, तेरा गया हुआ स्वास्थ्य वापस मिल सकता है, तेरा उजड़ा हुआ जीवन लौटाया जा सकता है। मुझसे कह, तेरे सिर के सफेद बालो को छूकर फिर से काला कर दूँ। देवकुलीश! अब भी समय है, अपना संकल्प त्याग दे।

मगर बहादुर सत्यार्थी ने देवी का कहना न माना और आगे बढा। उसका कलेजा धडक रहा था, उसके पाँव लड़खडा रहे थे, उसके हाथ काँप रहे थे, उसका सिर चकरा रहा था, मगर वह फिर भी आगे बढा। उसने अपनी आत्मा और शरीर की सारी शक्तियाँ हाथों मे जमा कीं और उन्हे फैलाकर सत्य का अतिम परदा फाड दिया।

ओ परमात्मा!

चारो ओर अधकार छा गया था; ऐसा भयानक अधकार, जैसा इससे पूर्व देवकुलीश ने कभी न देखा था। उसने चिल्लाकर कहा—देवी माता! यह क्या हो गया? मुझे कुछ दिखाई नही देता, वह जो परदे के पीछे था, कहाँ चला गया?

देवी ने मधुर स्वर से कहा—देवकुलीश! देवकुलीश!!

देवकुलीश ने अँधेरे मे टटोलते हुए कहा—देवी! मुझे बता, वह कहाँ है? मैं कहाँ हूँ, तू कहाँ है?

देवी ने अपना हाथ धीरे से उसके कधे पर रखा और जवाब दिया—देवकुलीश! तेरी आँखे नंगे सत्य का दृश्य देखने में असमर्थ होने के कारण फूट गई। अब ससार की कोई शक्ति ऐसी नही, जो उन्हे ठीक कर सके। मैंने तुझसे कहा था, यह विचार छोड़ दे, परन्तु तूने न माना और अब तूने देख लिया कि जब मनुष्य सत्य को नगा देखना चाहता है तो क्या देखता है। सत्य परदो के अदर ही से देखा जा सकता है। जब उसका परदा उतार दिया जाता है तो मनुष्य वह देखता है, जो कभी नही देख सकता।

देवकुलीश बादलो के पहाड पर मुँह के बल गिर पडा और फूट-फूटकर रोने लगा।

हजारो वर्ष बीत चुके हैं, मगर एथेस के सत्यार्थी की खोज अभी तक जारी है। अगर कोई आदमी बादलो के पहाड़ की सुनसान घाटियो मे जा सके तो उसे देवकुलीश के रोने की आवाज अभी उसी तरह सुनाई देगी।

झलमला

मै बरामदे मे टहल रहा था। इतने में मैने देखा कि विमला दासी अपने आँचल के नीचे एक प्रदीप लेकर वडी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैने पूछा—क्यों री ! यह क्या है ? वह बोली—झलमला। मैने फिर पूछा—इससे क्या होगा ? उसने उत्तर दिया—नही जानते हो बाबू, आज तुम्हारी वडी भाभी पडितजी की बहू की सखी होकर आई है इसीलिए मै उन्हे झलमला दिखाने जा रही हूँ।

तब तो मैं भी किताब फेंककर घर के भीतर दौड गया। दीदी से जाकर मै कहने लगा—दीदी, थोड़ा तेल तो दो।

दीदी ने कहा—जा, अभी मैं काम मे लगी हूँ।

मै निराश होकर अपने कमरे मे लौट आया। फिर मैं सोचने लगा—यह अवसर जाने न देना चाहिए, अच्छी दिल्लगी होगी। मै इधर-उधर देखने लगा। इतने मे मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकडे पर पडी। मैंने उसे उठा लिया और दियासलाई का बक्स लेकर भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देखकर भाभी ने पूछा—कैसे आये बाबू; मैने विना उत्तर दिये ही मोमबत्ती के टुकडे को जलाकर उनके सामने रख दिया। भाभी ने हँसकर पूछा—यह क्या है ?

मैने गभीर स्वर मे उत्तर दिया—झलमला।

भाभी ने कुछ न कहकर मेरे हाथ पर पाँच रुपये रख दिये। मै कहने लगा—भाभी, क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है?

भाभी ने हँसकर कहा—तो कितना चाहिए? मैंने कहा—कम से कम एक गिन्नी। भाभी कहने लगी—अच्छा इस पर लिख दो; मै अभी देती हूँ।

मैंने तुरत ही चाकू से मोमबत्ती के टुकडे पर लिख दिया—'मूल्य एक गिन्नी।' भाभी ने गिन्नी निकालकर मुझे दे दी और मै अपने कमरे मे चला आया। कुछ दिनो बाद गिन्नी के खर्च हो जाने पर मै यह घटना विलकुल भूल गया।

(२)

८ वर्ष व्यतीत हो गये। मै बी० ए०, एल-एल० बी० होकर इलाहाबाद से घर लौटा। घर की वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी। न भाभी थी, न विमला दासी ही। भाभी हम लोगो को सदा के लिए छोडकर स्वर्ग चली गई थी, और विमला कटगी मे खेती करती थी।

सध्या का समय था। मै अपने कमरे मे बैठा न जाने क्या सोच रहा था। पास ही कमरे मे पडोस की कुछ स्त्रियो के साथ दीदी बैठी थी। कुछ बाते हो रही थी, इतने मे मैने सुना, दीदी किसी स्त्री से कह रही है—कुछ भी हो वहिन, मेरी वह घर की लक्ष्मी थी। उस स्त्री ने कहा—हाँ बहिन, खूब याद आई, मै तुमसे पूछनेवाली थी। उस दिन तुमने मेरे पास सखी का सदूक भेजा था न? दीदी ने उत्तर दिया—हाँ बहिन, बहू कह गई थी, उसे रोहिणी को दे देना। उस स्त्री ने कहा—उसमे सब तो ठीक था; पर एक विचित्र बात थी। दीदी ने पूछा—कैसी विचित्र बात? वह कहने लगी—उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमे एक जगह खूब हिफाजत से रेशमी रूमाल मे कुछ बँधा हुआ था। मैं सोचने लगी यह क्या है। कौतूहल वश उसे खोलकर देखा। बहिन, कहो तो उसमे भला क्या रहा होगा?

दीदी ने उत्तर दिया—गहना रहा होगा। उसने हँसकर कहा—नही, गहना न था। वह तो एक अधजली मोमबत्ती का टुकडा था और उसपर लिखा था—'मूल्य एक गिन्नी।' क्षण-भर के लिए मै ज्ञान-शून्य हो गया फिर अपने हृदय के आवेग को न रोककर मै उस कमरे मे घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा—वह मेरी है, मुझे दे दो! कुछ स्त्रियाँ मुझे देखकर भागने लगी। कुछ इधर-उधर देखने लगी। उस स्त्री ने अपना सिर ढाँपते-ढाँपते कहा—अच्छा बाबू, कल मै उसे भेज दूँगी। पर मैने रात को ही एक दासी भेजकर उस टुकडे को मँगा लिया। उस दिन मुझसे कुछ नही खाया गया। पूछे जाने पर मैने यह कहकर टाल दिया कि सिर मे दर्द है। बडी देर तक इधर-उधर टहलता रहा। जब सब सोने के लिए गये तब अपने कमरे मे आया। मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी—सिर का दर्द कैसा है? पर मैने कुछ उत्तर न दिया, चुपचाप जेब से मोमबत्ती को निकालकर उसे जलाया और उसे एक कोने मे रख दिया।

कमला ने पूछा—यह क्या है?

मैने उत्तर दिया—झलमला।

कमला कुछ न समझ सकी। मैने देखा कि थोडी देर मे मेरे झलमले का क्षुद्र आलोक रात्रि के अधकार मे विलीन हो गया।

खेल

मौन-मुग्ध सध्या स्मित प्रकाश से हँस रही थी। उस समय गगाके निर्जन वालुका-तीर पर एक बालक और एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गगातट के बालू और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड कर रहे थे।

प्रकृति इन निर्दोष परमात्म-खंडो को निःस्तब्ध और निर्निमेष निहार रही थी। बालक कही से एक लकडी लाकर तट के जल को छटाछट

उछाल रहा था। पानी मानो चोट खाकर भी बालक स मित्रता जोडने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप-थोपकर एक भाड बना रही थी।

बनाते-बनाते भाड से बालिका बोली—देख, ठीक नही बना तो मैं तुझे फोड दूंगी। फिर बड़े प्यार से थपका-थपकाकर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी, इसके ऊपर मै एक कुटी बनाऊँगी—वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर?.. नही, वह कुटी मे नही रहेगा, बाहर खड़ा-खड़ा भाड़ मे पत्ते झोकेगा। जब वह हार जायगा, बहुत कहेगा, हाथ जोडेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर लूंगी।

मनोहर उधर अपने पानी से हिलमिलकर खेल रहा था। उसे क्या मालूम कि यहाँ अकारण ही उस पर रोप और अनुग्रह किया जा रहा है।

बालिका सोच रही थी, मनोहर कैसा अच्छा है। पर वह दगई बडा है। हमे छेडता ही रहता है। अबके दगा करेगा, तो हम उसे कुटी में साझी नही करेगे। साझी होने को कहेगा तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब साझी करेगे।

बालिका सुरबाला सातवे वर्ष मे थी। मनोहर कोई दो साल उससे बडा था।

बालिका को अचानक ध्यान आया, भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे? मेरा क्या, मै तो रह जाऊँगी, पर मनोहर तो जलेगा। फिर सोचा—उससे मैं कह दूंगी, भई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर वह अगर नही माना? मेरे पास वह बैठने को आया ही—तो? मै कहूँगी, भाई, ठहरो, मै ही बाहर आती हूँ। .. पर वह मेरे पास आने की जिद करेगा क्या?...जरूर करेगा, वह बडा हठी है। पर मै उसे आने नही दूंगी। बेचारा तपेगा—भला कुछ ठीक है! ज्यादा कहेगा, मै धक्का दे दूंगी, कहूँगी—अरे जल जायगा मूरख! यह

सोचने पर उसे बडा मजा-सा आया। पर उसका मुँह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का हास्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भाँति प्रत्यक्ष हो गया।

बालिका ने दो एक पक्के हाथ भाड पर लगाकर देखा—भाड अब बिलकुल बन गया है। मा जिस सतर्क सावधानी के साथ अपने नवजात शिशु को बिछौने पर लिटाने को छोडती है, वैसे ही सुरबाला ने अपना पैर धीरे-धीरे भाड़ के नीचे से खींचकर निकाला। इस क्रिया मे वह सचमुच भाड को पुचकारती जाती थी। उसके पैर पर ही तो भाड टिका है। पैर का आश्रय हट जाने पर बेचारा कही टूट न पडे! पैर साफ निकलने पर भाड जब ज्यों-का-त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद से नाच उठी।

बालिका अब एक दम ही बेवकूफ मनोहर को इस अलौकिक चातुर्य से परिपूर्ण भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच लाने को उद्यत हो गई। मूर्ख लडका पानी से उलझ रहा है, यहाँ कैसी जबरदस्त कारगुजारी हुई है—सो नही देखता! ऐसा पक्का भाड उसने कही देखा भी है!

पर सोचा, अभी नही, पहले कुटी तो बना लूँ। यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बडे धीरे-से भाड के सिर पर छोड दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेत धीरे-धीरे वहाँ छोडकर सुरबाला ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड तैयार हो गया। पर पडोस का भाड जब बालिका ने पूरा-पूरा याद किया तो पता चला कि एक कमी रह गई। धुआँ कहाँ से निकलेगा? तनिक सोचकर उसने एक सीक टेढी करके उसमे गाढ दी। बस, ब्रह्मांड का सबसे सपूर्ण भाड और विश्व की सबसे सुन्दर वस्तु तैयार हो गई।

वह उजड्ड मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन करावेगी, पर अभी जरा थोड़ा देख तो ले। सुरबाला मुँह खुला, आँख स्थिर, इस भाड-श्रेष्ठ को देख देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहाँ विराजते है, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताये, इस भाड के जादू में।

मनोहर अपनी सुरी-सुरी-सुरी की याद कर, पानी से नाता तोड़ और हाथ की लकड़ी को भरपूर जोर से गंगा की धारा में फेंक जब मुड़ा, तब श्री सुरबाला देवी एकटक अपनी परमात्म लीला के जादू को बूझने और सुलझाने में लगी हुई थी।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा—श्रीमती बिलकुल अपने भाड़ में अटकी हुई हैं। उसने जोर से कहकहा लगाकर एक लात से भाड़ का काम तमाम कर दिया।

न-जाने क्या किला फतह किया हो, ऐसे महत्व से भरा मनोहर चिल्लाया—सुर्री रानी!

सुर्री रानी मूक खड़ी थीं। उनके मुँह पर जहाँ विशुद्ध रस था, वहाँ अब एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग सांगोपांग उपस्थित था। वह उन्हीं का अपना रचा हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक-एक मनोरमता और रमणीयता को दिखलाना चाहती थी। हा, हत! वह व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़-फोड़ डाला! रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गईं।

हमारे विद्वान् पाठकों में से कोई होता, तो उस झूठमूठ की मूर्ख रानी को समझाता—यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या? जो जिससे बनता है, वह उसी में लय हो जाता है। इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है? यह संसार जल का बुदबुद है, फूटकर किसी रोज जल में ही मिल जायगा। फूट जाने में ही बुदबुद की सार्थकता है। जो यह नहीं समझते वे दया के पात्र हैं। री, मूर्ख लड़की, तू समझ। सब ब्रह्मांड ब्रह्म का है, और उसी में लीन हो जायगा। इसमें तू किसलिए व्यर्थ व्यथा सह रही है? रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया, रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर, इससे शिक्षा ले। जिसने लात मार कर उसे तोड़ा है, वह तो परमात्मा का केवल साधन-मात्र है। परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं। लड़की, तू मूर्ख क्यों बनती है?

परमात्मा की इस शिक्षा को समझ और परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास कर... आदि-आदि।

पर बेचारी बालिका का दुर्भाग्य, कोई विज्ञ धीमान् पंडित तत्वोपदेश के लिए उस गंगा तट पर नहीं पहुँच सके। हमें तो यह भी संदेह है कि सुर्री एक-दम इतनी जड़मूर्खा है कि यदि कोई परोपकार-रत पंडित परमात्म-निर्देश से वहाँ पहुँचकर उपदेश देने भी लगते, तो वह उनकी बात को न सुनती और न समझती। पर, अब तो वहाँ निर्बुद्धि शठ मनोहर के सिवा और कोई नहीं है और मनोहर विश्व-तत्व की एक भी बात नहीं जानता। उसका मन न जाने कैसा हो रहा है। कोई उसे जैसे भीतर ही भीतर मसोसे डाल रहा है। लेकिन उसने बनकर कहा—सुर्री, दुत् पगली, रूठती है!

सुरबाला वैसी ही खड़ी रही।

'सुरी, रूठती क्यों है?'

बाला तनिक न हिली।

'सुरी! सुरी!... ओ, सुरी!'

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज़ हठात् कँपी-सी निकली।

सुरबाला अब और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कंपन का सामना शायद उससे न हो सका।

'सुरी, . ओ सुरिया! मैं मनोहर हूँ. . मनोहर! . मुझे मारती नहीं!'—यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

'हम नहीं बोलते।'—बालिका से बिना बोले न रहा गया। उसका भाड़ का स्वर्ग शायद विलीन हो गया और उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान कांपती हुई मनोहर की आवाज़ ने ले लिया। वही आवाज़ मानो सब कहीं व्यापक चित्र-सी लिख गई।

मनोहर ने बड़ा बल लगाकर कहा—'सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है, वह बड़ा खराब है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यो नही फेंक देती, मार क्यों नही देती! उसे एक थप्पड लगा—वह अब कभी कसूर नही करेगा।'

बाला ने कडककर कहा—'चुप रहो जी!'

'चुप रहता हूँ, पर मुझे देखोगी भी नही?'

'नहीं देखते।'

'अच्छा, मत देखो। मत ही देखो। मै अब कभी सामने न आऊँगा, मै इसी लायक हूँ।'

'कह दिया तुमसे, चुप रहो। हम नही बोलते।'

बालिका मे व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो जाने कहाँ उडकर खो चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो व्याज-कोप का रूप धर रहा था। दूसरे शब्दो मे यह स्त्रीत्व था।

मनोहर बोला—'लो सुरी, मै नही बोलता। मै बैठ जाता हूँ। यहीं बैठा रहूँगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूंगा, न बोलूंगा।'

मनोहर चुप बैठ गया। कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली—हमारा भाड क्यो तोडा जी? हमार भाड बना के दो!

'लो, अभी लो।'

'हम वैसा ही लेगे।'

'वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।'

'उस पै हमारी कुटी थी, उस पै धुएँ का रास्ता था।'

'लो, सब लो! तुम बताती जाओ, मै बनाता जाऊँ।'

'हम नही बतायेगे। तुमने क्यो तोडा? तुमने तोडा, तुम्ही बनाओ।'

'अच्छा! पर तुम इधर देखो तो।'

'हम नही देखते, पहले भाड बना के दो।'

मनोहर ने एक भाड बनाकर तैयार किया। कहा—'लो, भाड बन गया।'

'बन गया?'

'हाँ!'

'धुएँ का रास्ता बनाया? कुटी बनाई?'

'सो कैसे बनाऊँ—बताओ तो।'

'पहले बनाओ, तब बताऊँगी।'

भाड के सिर पर एक सीक लगाकर और एक पत्ते की ओट लगाकर कहा—'बना दिया।'

तुरत मुडकर सुरबाला ने कहा—'अच्छा दिखाओ!'

'सीक ठीक नही लगी जी, पत्ता ऐसे लगेगा?'—आदि-आदि संशोधन कर चुकने पर मनोहर को हुक्म हुआ—

'थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेगे।'

मनोहर पानी लाया।

गगाजल से करपात्रो द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरी रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया।

सुरबाला रानी हँसी से नाच उठी! मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रात मे वह निर्मल शिशुहास्य-रव लहरे लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालको जैसे लाल-लाल मुँह से गुलाबी हँसी हँस रहे थे। गगा मानो जान-बूझकर किलकारियाँ भर रही थी। और वे लबे ऊँचे दिग्गज पेड, दार्शनिक पडितो की भाँति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मन ही मन गभीर तत्वावलोकन कर, कही हँसी मे भूले मूर्खों पर आँसू बहाना तो नही चाह रहे थे—वे बेचारे।

—❧—

प्रायश्चित

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला लिया और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढँककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर यह बात यहीं तक रह जाती तो बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परच गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बालाई गायब। रामू की बहू ने तै कर लिया या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबंदी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, बालाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली।

इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी, पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासिले पर कि रामू की बहू उसपर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ जाने से रामू की बहू को घर मे रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थी सास की मीठी झिडकियाँ, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध मे ओटे गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे मे बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूंघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अदाज़ी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पजा कटोरे मे लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान मे पहुँची। सास के सामने पान फेककर वह दौडी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकडे-टुकडे, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उडा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चपत।

रामू की बहू पर खून-सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नीद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिदा न बचे, यही पडे-पडे सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बडे प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली, न डुली, न चीखी, न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माजी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—माजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनायेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोली—हाँ, ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है, बहू, यह क्या कर डाला।

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को बुलाय लाई।

सास की जान-में-जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पंडितजी को बुला ला।

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतो का रामू के घर मे ताँता बँध गया। चारो तरफ से प्रश्नो की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पंडित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही उठ पडे। पंडिताइन से मुस्कराते हुए बोले—भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित होगा, पकवानो पर हाथ लगेगा।

पडित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से आदमी थे। लवाई चार फीट प इंच, और तोद का घेरा अट्ठावन इच, चेहरा गोल-मटोल, मूंछ बडी-डी, रग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा मे जब पसेरी खुराकवाले पडितों को ढूँढा जाता ा तो पडित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पडित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाइत वैठी—ासजी, मिसरानी, किसनू की मा, छन्नू की दादी और पडित परमसुख! ाकी स्त्रियाँ वहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थी।

किसनू की मा ने कहा—पडितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन रक मिलता है?

पडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—विल्ली की हत्या अकेले े तो नरक का नाम नही वतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम ो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।

यही कोई सात बजे सुवह।—मिसरानीजी ने कहा।

पडित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरो पर उँगलियाँ चलाई, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुडी और स्वर गभीर हो गया, हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बडा बुरा हुआ, प्रात काल ब्राह्म-मुहूर्त मे विल्ली की हत्या! घोर कुभीपाक नरक का विधान है! रामू की मा, यह तो वडा बुरा हुआ।

रामू की मा की आँखो में आँसू आ गये—तो फिर पडितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलायें?

पडित परमसुख मुस्कराये—रामू की मा, चिंता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए है? शास्त्रो में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जायगा।

रामू की मा ने कहा—पडितजी, इसी लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय?

किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।

छन्नू की दादी—हाँ, और क्या, पडितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।

रामू की मा ने कहा—तो पडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय?

पडित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—बिल्ली कितनी तोले की बनवाई जाय? अरे रामू की मा, शास्त्रो मे तो लिखा है कि बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नही रही। सो रामू की मा, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योकि बिल्ली बीस-एक्कीस सेर से कम की क्या होगी, हाँ, कम-से-कम एक्कीस तोले की बिल्ली बनवा कर दान करवा दो और आगे तो अपनी अपनी श्रद्धा!

रामू की मा ने आँखे फाडकर पडित परमसुख को देखा—अरे बाप रे! एक्कीस तोला सोना! पडितजी, यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम न निकलेगा?

पडित परमसुख हँस पडे—रामू की मा! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे, रुपये का लोभ बहू से बढ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमे इतना लोभ ठीक नही!

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पडित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है हम लोग किस दिन के लिए है! रामू की मा, मै पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।

पूजा का सामान कितना लगेगा ?

अरे कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ, और पाँच मन चना, चार पसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा। बस, इतने से काम चल जायगा।

अरे बापरे! इतना सामान, पडितजी, इससे तो सौ-डेढ-सौ रुपया खर्च हो जायगा—रामू की मा ने रुआँसी होकर कहा।

फिर इससे कम मे तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बडा पाप है, रामू की मा! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो! यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोडे ही है—और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त मे उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोडे है। अरे सौ-डेढ सौ रुपया आप लोगो के हाथ की मैल है।

पडित परमसुख की बात से पच प्रभावित हुए, किसनू की मा ने कहा—पडितजी ठीक तो कहते है, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नही—बडे पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।

छन्नू की दादी ने कहा—और नही तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते है। दान-पुन्न मे किफायत ठीक नही।

मिसरानी ने कहा—और फिर माजी, आप लोग बडे आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगो को अखरेगा!

रामू की मा ने अपने चारो ओर देखा—सभी पच पडितजी के साथ। पडित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होने कहा—रामू की मा, एक तरफ तो बहू के लिए कुभीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च है। सो उससे मुँह न मोडो।

एक ठढी सांस लेते हुए रामू की मा ने कहा—अब तो, जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।

पंडित परमसुख जरा कुछ बिगडकर बोले—रामू की मा! यह तो खुशी की बात है। अगर तुम्हे यह अखरता है तो न करो—मै चला! इतना कहकर पंडितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

अरे पंडितजी, रामू की मा को कुछ नही अखरता—बेचारी को कितना दु:ख है—बिगडो न। मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की मा ने एक स्वर मे कहा।

रामू की माँ ने पंडितजी के पैर पकड़े—और पंडितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

और क्या हो?

इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनो बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणो को भोजन करवाना पड़ेगा। कुछ रुककर पंडित परम-सुख ने कहा—सो इसकी चिंता न करो, मै अकेले दोनो समय भोजन कर लूंगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा।

यह तो पंडितजी ठीक कहते है, पंडितजी की तोंद तो देखो...
मिसरानी ने मुसकराते हुए पंडितजी पर व्यंग किया।

अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मा, ग्यारह तोला सोना निकालो, मै उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घंटे मे मै बनवाकर लौटूंगा, तब तक सब पूजा का प्रबंध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए—

पंडितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे मे घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की मा ने घबड़ाकर कहा—अरी क्या हुआ री?

महरी ने लड़खडाते स्वर मे कहा—माजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई!

उपहार

विमला खाना परोस रही थी। कमल बैठा पत्र लिख रहा था। वह सोचता था कि जब इसे समाप्त कर लूँगा, तब उठूँगा। देर ही क्या है, कुछ भी तो और अधिक नही लिखना है। बस, यही दो तीन—हाँ, दो ही—पक्तियाँ और लिखने को है कि फिर मैं हूँ और भोजन।

और विमला मन-ही-मन झुँझला रही थी कि जब तक मैं शाक पकाऊँ-पकाऊँ तब तक तो आफत मचा दी। दो-दो मिनट मे विकल हो-होकर पूछते रहे कि कितनी देर है—कितनी देर है! और अब जब मैं खाना परोसने लगी, तो 'आया, आया, बस अभी हाल आया' कह रहे हैं—मगर आते नहीं! बस, इनकी यही प्रकृति मुझे अच्छी नही लगती। कितनी तकलीफ होती है खाना पकाने मे! बनाना पडे, तो मालूम हो जाय। और मालूम क्या हो जाय, खुद भी तो न खा सके उसे। फिर भी किसी तरह जो मर-खप के बना भी लूँ, तो यह हाल है इनका कि मुझे बेवकूफ बनना पडता है। कुछ कहो, तो झट जवाब दे बैठेगे कि फिर बनाती ही बेकार हो—मैंने तो हजार बार कहा कि महराजिन रख लो। ...मैं भी बैठी रहूँगी, इसी तरह। जब बुलाना व्यर्थ है, तो बुलाया ही क्यो जाय? न, मैं अब नही बुलाऊँगी, नही, किसी तरह नही।

'अरे सुनती हो?'

विमला को ही लक्ष्य करके कमल ने कहा था। लेकिन विमला ने सुनकर भी नही सुना। उसने कोई उत्तर नही दिया। वह क्यो उत्तर दे? किसका उत्तर दे? किसे उसके उत्तर की अपेक्षा है? जब कहते-कहते हार गई, तब नही आये। और अब इतनी देर के बाद भी, वही से कहते हैं—सुनती हो?

कौन सुनती है ? कोई नही सुनती ! क्यो सुने कोई ? क्या पडी है उसे जो सुने ? वह नही सुनती है । कोई नही सुन रहा है । कोई सुनने क्यो लगा ? वह सुनती तो है, मगर नही सुनती, हाँ, नही सुनती ।

कमल अब उठकर उसके पास चला आया । वह चला तो आया, पर निकट खडा रहकर बोला—कुछ लोग आ गये है और उनसे इसी समय दो बाते कर लेनी है । बेचारे बडी दूर से आये है । मुझसे यह नही हो सकता कि उन्हे बैरंग वापस लौटा दूँ । कुछ वक्त देना ही पड़ेगा । कुछ ऐसी ही आवश्यकता है । समझती हो न ? तुम अब खाना खा लो । मुझे शायद देर ही लग जाय । . . शायद क्या, बल्कि निश्चित है देर लग जाना ।

विमला ने पहले तो चाहा कि वह चुप ही रहे अब भी, उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे । किन्तु वह वास्तव मे इस प्रकार की नारी नही है । परिस्थिति और कारण को लेकर उसकी मर्यादा की अवमानना करना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है । वह अतीत से उलझती रहती है, क्योकि उसी का प्रभाव लेकर भविष्य को देखती है; किन्तु वर्तमान की उपेक्षा उसे स्वीकार नही होती । अतएव उसने कहा—किन्तु क्या दस-पाँच मिनट के लिए उन्हें रोक नही सकते ? वे लोग क्या तुम्हारा इस समय भोजन करना भी रोक देना उचित समझेगे ? तुम्हारी असुविधा का क्या उन्हे कुछ भी खयाल न होगा ?

कमल ने लक्ष्य किया, विमला खुद भी भूखी है । समय भी अधिक हो गया । इसी स्थिति में उसने बनाया है । कितनी देर से वह प्रतीक्षा मे बैठी है । और अब जब कि मुझे उसके साथ बैठकर खाना चाहिए, मै उससे इस प्रकार का प्रस्ताव कर रहा हूँ ।

उसने एक बार फिर जो विमला के उत्तप्त अरुण मुख की ओर ध्यान से देखा तो उसे अपना प्रस्ताव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत हुआ । वह लौट पडा । लौटते हुए कह गया—अच्छा, तो मै अभी आया । उन्हें कमरे में

आदर के साथ विठा आऊँ और साथ ही दस मिनट तक और अधिक प्रतीक्षा करने की अनुमनि ले आऊँ ।

'ओह ! तुम आये हो—मेरे राधाकात वावू—यह डेपूटेशन लेकर, अच्छा ! लेकिन यार, वहुत दिनो मे मिले हो, और फिर इस डेपूटेशन के साथ ! खैर, मै अभी आया । मैने अभी तक भोजन नही किया है । कुछ इतने आवश्यक कार्यों मे लगा रहा कि भोजन करने तक को समय पर न उठ सका । जा ही रहा था कि पता चला, आप लोग तशरीफ लाये है ।' कमल ने स्वाभाविक उल्लास-मुखरित ढग से कहा ।

'अच्छा तो है ! कर आओ भोजन, लेकिन अकेले-ही-अकेले भोजन कर लोगे ?' राधा वावू ने हास के मृदुल दोलन मे, साधारणतया कह दिया—उसी प्रकार, जैसे कोई भी मित्र दूसरे से ऐसी स्थिति मे प्राय. कह ही देता है ।

'अच्छी वात है, मेरा सौभाग्य ! चलो, तुम भी चलो ।' कमल के उत्तर के साथ उसका हार्दिक उल्लास भी मिश्रित होकर फूट निकला ।

'ऐसे नही जाता । इस तरह तुमको तो कुछ मालूम न होगा, किन्तु दूसरी आत्मा को जो आकस्मिक कष्ट होगा, उसे मै कैसे सहन करूँगा ? न यार कमलेश, मुझे इस समय भोजन नही करना है, मै तो यो ही कह उठा था । मै भोजन कर चुका हूँ ।' राधा वावू कहते-कहते गम्भीर हो उठे ।

कमल ने लक्ष्य किया, यह राधाकात एक समय कितना चटुल था ? क्लास-भर इसके मारे परेशान, वल्कि एक प्रकार से आदोलित रहता था । और आज देखता हूँ कि इस कालान्तर मे ही वह कैसा विवेकशील वन गया है ।

तव उस राधाकात के प्रति कमल पहले अजेय आदरभाव से देखकर रह गया, फिर कुछ सोच-समझकर वोला—नही राधे, असुविधा की कोई वात न होगी । कम पडेगा तो कुछ और वाजार से मँगवा लूँगा । चलो, चलो, अव तुम्हे चलना पड़ेगा ।

× × ×

कौन सुनती है ? कोई नही सुनती ! क्यो सुने कोई ? क्या पडी है उसे जो सुने ? वह नही सुनती है । कोई नहीं सुन रहा है । कोई सुनने क्यो लगा ! वह सुनती तो है, मगर नही सुनती, हाँ, नही सुनती।

कमल अब उठकर उसके पास चला आया। वह चला तो आया, पर निकट खडा रहकर बोला—कुछ लोग आ गये है और उनसे इसी समय दो बातें कर लेनी है। बेचारे वडी दूर से आये है। मुझसे यह नही हो सकता कि उन्हे बैरग वापस लौटा दूं। कुछ वक्त देना ही पडेगा। कुछ ऐसी ही आवश्यकता है। समझती हो न ? तुम अब खाना खा लो। मुझे शायद देर ही लग जाय। शायद क्या, बल्कि निश्चित है देर लग जाना।

विमला ने पहले तो चाहा कि वह चुप ही रहे अब भी, उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे। किन्तु वह वास्तव मे इस प्रकार की नारी नही है। परिस्थिति और कारण को लेकर उसकी मर्यादा की अवमानना करना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है। वह अतीत से उलझती रहती है, क्योंकि उसी का प्रभाव लेकर भविष्य को देखती है; किन्तु वर्तमान की उपेक्षा उसे स्वीकार नही होती। अतएव उसने कहा—किन्तु क्या दस-पाँच मिनट के लिए उन्हें रोक नही सकते ? वे लोग क्या तुम्हारा इस समय भोजन करना भी रोक देना उचित समझेंगे ? तुम्हारी असुविधा का क्या उन्हे कुछ भी खयाल न होगा ?

कमल ने लक्ष्य किया, विमला खुद भी भूखी है। समय भी अधिक हो गया। इसी स्थिति मे उसने बनाया है। कितनी देर से वह प्रतीक्षा मे बैठी है। और अब जब कि मुझे उसके साथ बैठकर खाना चाहिए, मैं उससे इस प्रकार का प्रस्ताव कर रहा हूँ।

उसने एक बार फिर जो विमला के उत्तप्त अरुण मुख की ओर ध्यान से देखा तो उसे अपना प्रस्ताव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत हुआ। वह लौट पडा। लौटते हुए कह गया—अच्छा, तो मै अभी आया। उन्हें कमरे में

आदर के साथ बिठा आऊँ और साथ ही दस मिनट तक और अधिक प्रतीक्षा करने की अनुमति ले आऊँ ।

'ओह ! तुम आये हो—मेरे राधाकात बाबू—यह डेपूटेशन लेकर, अच्छा ! लेकिन यार, बहुत दिनो मे मिले हो, और फिर इस डेपूटेशन के साथ ! खैर, मै अभी आया । मैने अभी तक भोजन नही किया है । कुछ इतने आवश्यक कार्यो मे लगा रहा कि भोजन करने तक को समय पर न उठ सका । जा ही रहा था कि पता चला, आप लोग तशरीफ लाये है ।' कमल ने स्वाभाविक उल्लास-मुखरित ढग से कहा ।

'अच्छा तो है ! कर आओ भोजन, लेकिन अकेले-ही-अकेले भोजन कर लोगे ?' राधा बाबू ने हास के मृदुल दोलन मे, साधारणतया कह दिया—उसी प्रकार, जैसे कोई भी मित्र दूसरे से ऐसी स्थिति मे प्राय कह ही देता है ।

'अच्छी बात है, मेरा सौभाग्य ! चलो, तुम भी चलो ।' कमल के उत्तर के साथ उसका हार्दिक उल्लास भी मिश्रित होकर फूट निकला ।

'ऐसे नही जाता । इस तरह तुमको तो कुछ मालूम न होगा, किन्तु दूसरी आत्मा को जो आकस्मिक कष्ट होगा, उसे मै कैसे सहन करूँगा ? न यार कमलेश, मुझे इस समय भोजन नही करना है, मै तो यो ही कह उठा था । मै भोजन कर चुका हूँ ।' राधा बाबू कहते-कहते गम्भीर हो उठे ।

कमल ने लक्ष्य किया, यह राधाकात एक समय कितना चटुल था ? क्लास-भर इसके मारे परेशान, बल्कि एक प्रकार से आदोलित रहता था । और आज देखता हूँ कि इस कालातर मे ही वह कैसा विवेकशील बन गया है ।

तब उस राधाकात के प्रति कमल पहले अजेय आदरभाव से देखकर रह गया, फिर कुछ सोच-समझकर बोला—नही राधे, असुविधा की कोई बात न होगी । कम पडेगा तो कुछ और बाजार से मँगवा लूँगा । चलो, चलो, अब तुम्हे चलना पडेगा ।

'मेरे एक मित्र भी खायँगे विमला! बड़े जबरदस्त आदमी हैं। इच्छा-मात्र करने से सफलता इनके चरण चूमती रही है। मुझे इनका क्लासफेलो रहने का गौरव प्राप्त हो चुका है। मुझे पता ही न था कि जेल जाकर भी यह शैतान बजाय दुर्बल पड़ने के इतना मोटा पड़ जायगा। देखती क्या हो, वजन मे तीन मन से कम न होगा। यह जो कुछ भी तुमने बना रखा है, मैं तो समझता हूँ, केवल इसके लिए भी काफी न होगा।' कमल ढूंढ़-ढूंढ़कर ऐसे शब्दो का प्रयोग कर रहा है, जिससे विमला को पता चल जाय कि उसका यह मित्र ऐसा-वैसा साधारण व्यक्ति नही है। बड़ा आदमी तो वह है ही, साथ ही उसका घनिष्ठ मित्र भी है।

तब विमला ने स्वामी के इस घनिष्ठ मित्र को केवल एक दृष्टि से देखकर साड़ी को सिर पर, आगे तक, कुछ और अधिक खिसका लिया है। दो थालियो मे भोजन जैसा परोसकर रखा था, उसे पूर्ववत् न रखकर उसमे थोड़ा-थोड़ा कम कर लिया है, क्योकि आकस्मिक आतिथ्य और समय-असमय के जलपान के लिए जो मिष्ट और सलोने खाद्य पदार्थ उसने बना रखे हैं, उनका भी उपयोग उसे अब करना है। बाजार से ही कुछ मँगाना पड़ा, तो फिर गृहस्थी की मर्यादा ही क्या रही?

परन्तु उसने कहा—आइए।

तब कमल अपने राधे को लेकर भोजन करने बैठ गया। वह भोजन कर रहा है और साथ ही कुछ सोचता भी जाता है। यो निरंतर उसे कुछ-न-कुछ सोचना ही पड़ता है। बात कम, काम अधिक—यही उसकी प्रकृति है। किन्तु जब कोई मित्र आया हो और साथ मे भोजन कर रहा हो, तब भी मौन ही बने रहना तो कुछ अधिक उत्तम या आवश्यक, प्रीतिकर या शोभन प्रतीत नही होता। मानो इसी बात को लक्ष्यकर कमल ने कह दिया—और कहो राधे, खूब अच्छी तरह से हो न? किसी प्रकार की कोई असुविधा या कष्ट या. . और क्या कहूँ?

अन्तिम शब्द कहते-कहते कमल राधे के मुँह की ओर देखकर हँस पड़ा।

'देखता हूँ, तुम बहुत बड़े आदमी हो गये। यहाँ तक कि तुमने इतना वैभव अर्जित कर लिया, इतना कि तुम्हे देखकर मुझे ईर्ष्या होती है, तो भी तुम्हारा वह असाधारण सारल्य ज्यो-का-त्यो बना है!' राधे भोजन करते हुए अपनी ये बाते इतने मन्द क्रम से करता जाता है कि न तो उसकी आहारगति प्रतिहत होने पाती है, न वार्ता-विनोद मे ही किसी प्रकार की अरोचक गति का संयोग हो पाता है। साथ-ही-साथ वह कभी-कभी विमला पर भी एक दृष्टि डाल देता है।

'तो तुम्हारा खयाल यह है कि काल-गति से हमारी प्रकृति भी बदल जाती है! लेकिन भाई राधे, मैं ऐसा नही मानता। जीवन के प्रकंपित अवधान हमारी गति बदल सकते है, हमारे आचार-व्यवहार की रूपरेखा को भी उलट-पुलट डालते हैं। मैं यह मानता हूँ। किन्तु किन्तु हमारी नैसर्गिक प्रकृति पर उनका अनुशासन कभी चल नही सकता, क्षणिक परिवर्तन करने मे भले ही वे यदा-कदा सफल होते रहे।

राधे कमल की इस बात को सुनकर मुसकराने लगा।

और कमल ने उसके इस हास की यथार्थता को लक्ष्य करके कहा—जान पडता है मेरे साथ तुम्हारा मतभेद पूर्ववत् बना है।

विमला दोनो को बाते करते छोड़कर भंडार मे चली गई थी। लौट कर उसने दो-दो कटोरियो मे मिष्टान्न और नमकीन पदार्थ दोनो थालियो के निकट रख दिये। तब उसी समय एक कटोरी से कुछ खुरमे एक साथ उठाकर मुँह में डालने के पूर्व राधे बोला—तुम्हारे गार्हस्थ्य-जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हे बधाई देता हूँ कमलेश!

कमल हँसने लगा। बोला—अच्छा-अच्छा, यह बात है! धन्यवाद। फिर विमला की ओर उत्फुल्ल लोचनो से देखकर कहने लगा—सुनती हो विमला, राधे तुम्हे बधाई दे रहा है।

विमला चाहती तो उत्तर मे कुछ कह सकती थी। किन्तु वह कुछ

कह न सकी। हाँ, विकल्प में थोडी मुडकर, कढाई मे रखे हुए शाक को एक कटोरे मे सम्हाल कर रखने मे व्यस्त अवश्य हो गई।

तब राधे ने उस समय न तो विमला को ही कुछ कहने का अवसर दिया, न कमलेश को। अब वह उसकी उस बात पर आ गया, जिस पर उसे मतभेद था। वह बोला—हाँ, तुम्हारी उस बात को तो मै भूल ही गया था, प्रकृति-परिवर्तन के सबंध मे जो तुमने अभी कही थी।

'हाँ, हाँ, कहो-कहो। मै जानना चाहता हूँ, इस विषय मे तुमने क्या अनुभव किया है, तुम्हारे विचार क्या है?' कमल ने कहा ही था कि राधे बोल उठा—असल बात यह है, कमलेश भाई, कि मनुष्य की प्रकृति ही को पहले जरा समझ लेने की जरूरत है। क्या उसकी प्रकृति है, और क्या अप्रकृति, वास्तव मे इसी को समझ लेना आवश्यक है। लोग प्राय कहा करते है, फलाँ आदमी तो बिलकुल ही बदल गया। लोग उसकी रूप-रेखा, उसके आकार-प्रकार को देखकर ही प्राय इस तरह की बाते कह डालते हैं। पर परिस्थितियो के चक्र मे घूमने और छिन्न-भिन्न होते हुए उसके क्षण-क्षण के जीवन को देखकर वे यह नही सोचते कि प्रकाश सदा प्रकाश ही रहता है। यह बात दूसरी है कि कोई प्रकाश दिन का हो, कोई निशा का। अब यहाँ प्रश्न यह है कि दिन का प्रकाश तो प्रकाश है और उसे ससार स्वीकार करता है। किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फटा हुआ है, वह अधकार क्यो है?

तब तत्काल उत्तरग मानस से कमलेश बोल उठा—वन्डरफुल! कितनी अच्छी बात तुमने अनायास कह डाली! वाह!!

विमला ने उसी समय एक बार राधे के उस तेजोमय मुख की ओर दृष्टिक्षेप किया। थोडी देर से उसकी छाती के भीतर भूकप-कालीन रत्नाकर की भाँति जो भीम विस्फूर्जन प्रतिध्वनित हो रहा था, राधे के इस कथन को लेकर और फिर एक बार उसकी ओर देखकर आप-से-आप वह बिल्कुल शिथिल, ध्वस्त हो उठा। जिस त्यक्त अतीत ने आज अभी उसके

मन-प्राण तक को बार-बार स्तम्भित, विकल-विकंपित कर-करके एक अव्यक्त अभियोग से अतिशय अस्थिर किंवा विमूढ कर डाला था, निमेषमात्र के इस वैकल्पिक उपायन से उसके पराभूत चित्त की सारी दुर्बलता बात-की-बात मे निष्प्रभ प्रशात हो उठी ।

इसी समय भोजन करके दोनो मित्र उठ खड़े हुए ।

❀ ❀ ❀

रात के ग्यारह बजे है ? कमलेश सो रहा है । पास ही विमला भी लेटी हुई करवटे बदल रही है । कुछ स्वप्न उसके मानसपट पर उतर आये है ।

'तुम्हारी यह आदत अच्छी नही है, भैया !'

'कौन-सी ?

'पूछते हो कौन-सी !'

'लो, जब मालूम नही है, तब पूछना भी गुनाह है !'

'हाँ, गुनाह । मै तुमसे भैया जो कहती हूँ ।'

वह चुप रह गया । उसका मुख यकायक उतर गया । कोई बात वह फिर न कह सका । तब वह चलने लगी । कुछ उद्विग्न होकर अपना तिरस्कार अपने ऊपर लादकर । किन्तु उसी समय उसने सुना, वह कह रहा है—मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का तुम्हे अब कभी अवसर न मिलेगा विमला ! मै यहा से चला जाऊँगा ।

वह लौट पड़ी । अपनी मर्यादित गभीरता से विचलित होकर वह बोली सचमुच, क्या तुम कानपुर छोड़ दोगे ?

'छोड़ना ही पड़ेगा विमला, क्योकि मनुष्य की प्रकृति बदल नही सकती ।' उत्तर मे वह कुछ न कह सकी थी । यद्यपि उन निर्बाध, नि.स्पद, निष्ठुर क्षणो ने उसके इस जीवन को ही व्यर्थ कर डाला, तो भी उन क्षणो को वह फिर कभी न पा सकी । आज तक न पा सकी ।

किन्तु वह था कितना दृढ़प्रतिज्ञ ! उसने कानपुर छोड़ ही दिया । यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया था । एकमात्र यही आदत थी उसकी कि

वह मुझे देखकर पुलकित हो उठता था। उसके उस हास्य-मुखरित आनन की उद्दीप्त आभा, उसकी उल्लास-तृप्त आँखे, अपना आंतरिक भाव प्रकट करने का लोभ संवरण न कर सकती थी। मुहल्ले की बात ठहरी। वह कभी-कभी अपनी सखियो के साथ निकलती, कभी मा-भाभी के साथ। और इन सबके साथ निकलने पर भी वह उसकी ओर एक बार देखे बिना मानता न था। फलत: एक अदम्य बहिरभिमुखी लज्जा से वह बिलकुल संकुचित तथा अभिभूत हो उठती थी।

बस, यही उसका अपराध था—और उससे संलग्न यही उसकी असुविधा!

और उसके बाद यह आज का दिन है।

'तुम्हारे गार्हस्थ्य-जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हे बधाई देता हूँ।' और मेरे गार्हस्थ्य-जीवन का यह कैसा 'सफल स्वरूप है!' किन्तु जो प्रकाश रजनी के अंतर से फूटा हुआ है, वह अंधकार क्यों है?' कौन कहता है कि वह अंधकार है! क्या अब भी किसी मे इतना साहस है कि वह उसे अंधकार कह सके? किंतु यह बात तो तुमने अपने आपको देखकर कह डाली है, क्योंकि तुम एक प्रकार के अकल्पित स्वप्न हो। किंतु यह तो एक कविता हुई। और इस विमला के भीतर जो नारी है, वह तो वैसी उस प्रकार की निरी कविता नही है, उसका एक शरीर है, एक पिंड। कभी उसे छूकर देखते तो जान पाते कि बाहर से प्रकाशमयी झलक मारनेवाली इस विमला के भीतर का अन्धकार अभी तक पूर्ववत् स्थिर है। अपने स्थान से वह टस-से-मस भी नही है। अभी तक उसके भीतर की गर्वित नारी उसी प्रकार तृषित है, जैसी वह कभी पहले थी। उसके प्रकृत स्वरूप का सांगोपांग अर्थ किया ही नही जा सका—यहाँ तक कि वह अभी तक मा भी नही हो सकी! और फिर भी तुम उसके गार्हस्थ्य-जीवन का साफल्य देखने चले थे। ओह! इस परिवार का अंतरंग न देखकर उसके बाह्य स्वरूप पर तुम ऐसे

मुग्ध हो उठे कि बधाई भी उसे दे डाली। किंतु तुम्हारी यह बधाई तो उन्ही के लिए थी। मेरे साथ उसका संबंध क्या ? न, वह बधाई मेरे लिए नही है, नही है।

किंतु ठीक तो है। उन्होंने कह डाला था—सुनती हो विमला, राधे तुम्हे बधाई दे रहा है।

लेकिन उनके कहने से भी वह बधाई मेरे लिए नही हो सकती। वह उनके लिए थी, हाँ, उन्ही के लिए। तो क्या वास्तव मे वे बधाई के पात्र है ? क्यो भला ? क्या वे बधाई के पात्र केवल इसलिए है कि मेरे जीवन की यह धारा भी उन्ही के साथ-साथ प्रवाहित हो रही है ? तो तुम सोचते हो कि यह विमला अभी तक इसमे समर्थ है कि उसकी संगति का योगमात्र किसी को भी बधाई का पात्र बना सकता है ? उफ, तुम ऐसा क्यो मानते हो राधे भैया ? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये ? क्या तुम्हें याद नही रहा तुमने किसी को कुछ कहा था ? कहा था कि मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का अब तुम्हे कभी अवसर न मिलेगा !.. तो फिर इतने दिनो के बाद तुमने यह अवसर क्यो दिया ?

झर, झर, झर !

ये आँसुओ की बूँदे है कि सुधार्णव के मोती ?

ओह ! जीवन के ये दस वर्ष यो ही बीत गये। युग पलटा, कितने भूकप आये। कितनी रिम-झिम राते, कितनी शारदी निशाएँ, कितने वासंतिक दोलन आये और गये, किन्तु राधे की छाया भी कही न देख पडी। और एक युग के बाद, जानबूझकर भी नही, अनायास वे जो इस कुटीर मे आ ही पडे, तो यह विमला, यह मूर्त कालिमा अपने आपको न देखकर दोष देती है उसे, जो दिवाकर की भाँति वरेण्य और मनस्वी है !

तो तुम मुझसे बोले क्यो नही ? कुछ विस्मय और कुछ दुलार से ओत-प्रोत होकर तुमने मुझे निकट पाकर, मेरा नाम लेकर पुकारा क्यो नही ?

तुम्हारी मुद्रा इतनी गम्भीर क्यों बनी रही ? एक बार भी सिर उठाकर तुमने मुझे ध्यान से देखा क्यों नहीं ? हूँ, मुझसे छूटकर जाओगे कहाँ ?

झर, ! झर, ! झर !

ये अमृत की बूँदें क्रमागत रूप से क्यों आ रही हैं ? झरने से बूँदें तो यों निरंतर आ सकती हैं; किन्तु इस प्रकार के अमृत बूँदों को वह कहाँ से लायेगा ? और उनके निःस्राव के साथ यह निःस्वन कैसा है ! ये रुदन की सिसकियाँ हैं कि निर्झर की उत्ताल ऊर्मिमालाओं का अजस्र मुखरित महोल्लास ।

❀ ❀ ❀

'एँ ! तुम रोती हो विमला ?'

एकाएक उठकर झट से विद्युत् प्रकाश प्रस्फुटित कर कमल विमला के पलंग पर आकर उससे मिश्रित होकर बैठ गया । फिर उसके सिर की कुन्तलराशि, वेणी और उसके अन्तिम छोर तक अपना वाम हस्त फेरते हुए बोला—रोती क्यों हो विमला ? बतलाओ । मैं जानना चाहता हूँ, क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है ?

अब विमला आँसू पोंछकर, स्थिर होकर, बैठ गई । उसका एक हाथ अब भी कमल के हाथों में था । उसके रुद्र-गंभीर मुख की अप्रकृत भंगिमा देखकर कमल यकायक स्तब्ध हो उठा और उसी समय विमला बोली—अपराध ? अपराध की बात पूछते हो ?

'हाँ ।'

'तो इस राधे को तुम अन्दर क्यों ले आये ? किससे पूछकर ले आये ?'

कमलेश अवाक् हो उठा । तुरन्त तो वह कोई भी उत्तर न दे सका । किन्तु क्षण-भर के बाद बोला—वह मेरा एक मित्र था, चिरपरिचित मित्र ।

उसका स्वागत-सत्कार करना मेरे लिए आवश्यक था,. किन्तु वह कोई भी हो, उसके सबंध मे इतना सोचने की आवश्यकता ही क्या है ?

'वह क्यो आया था ?'

'एक प्रस्ताव लेकर।'

'क्या उत्तर दिया ?'

'उसकी बात मान लेना ही मैंने उचित समझा। स्वदेश के पीछे उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर रखा है। उसे निर्विरोध कौंसिल मे जाना चाहिए। उसके पक्ष मे मैंने अपने आपको रोक लिया है।'

'जी—व—न—उ—त्स—र्ग कर रखा है!' विमला ने अतिशय मंद स्वर मे अटक-अटककर इस तरह कहा कि कमल उसकी अपरूप मुद्रा देखकर चकित-स्तंभित हो उठा। क्षण-भर रुककर बोला—बात क्या है विमला ? मै जरा साफ-साफ जानना चाहता हूँ।

'वह मेरा शत्रु है। मेरी जीवन-धारा को उसने व्यर्थ ही मे विकृत करने की चेष्टा की है। मुहल्ले के नाते से मै उसकी बहन होती हूं। फिर भी जान-बूझकर उसने मेरी अवहेलना की। मै इसे कैसे सहन कर सकती हूँ ?'

❀ ❀ ❀

'अरी पगली—यह मेरी ही भूल है ? लेकिन तुम जानती हो विमला, मै कुछ आज का नया भुलक्कड नही हूँ। .खैर, मुझे इसका दुःख है।' चलते-चलाते वह अपनी सोने की घडी तुम्हे भेंट-स्वरूप दे गया है। उसने कहा भी था—यह घडी मेरी बहन को दे देना। तुम उसे ले लो अभी। वह मेरे कोट के भीतरी जेब मे पड़ी है।'

और विमला सोचती है—यह उपहार है कि मृत्यु ?

पथ में से

हमेशा का झझट छूटने का भाव दिखाते हुए मैंने कह दिया—अच्छा चलो, परन्तु आज के ही लिए। फिर कभी नही।

रामदेव जोर से हँस पडा, बोला—फिर कभी ले चलने की मुझे जरूरत न पड़ेगी। फिर तो मुझे घसीटकर ले चला करोगे।

अपनी झेप मिटाने के लिए मैंने हँसकर उसके कधे पर अपने दोनो हाथ दे मारे। कहा—तुम वडे दुष्ट हो!

रामदेव को 'दुष्ट' कहना ही उसकी सबसे वडी प्रशंसा थी। अपनी दुष्टता के गौरव का अनुभव करके उसका मुँह आनन्द से और भी दमक उठी। मुझे चलने के लिए बिलकुल तैयार देखकर मुँह पर विस्मय का भाव लाते हुए बोले—भले आदमी, आज भी यह टाट ही पहने रहोगे? घण्टे-भर के लिए इसे छोड दोगे, जन्म-भर का पुण्य चला न जायगा!

रामदेव 'टाट' कहकर मेरे खद्दर की हँसी उडाया करता था। असहयोग के दिनो की उत्तेजना के वशीभूत होकर मैंने खद्दर पहनना शुरू किया था। बाद में मालूम हुआ कि यह वेश धारण करना जितना आसान है, इसे निभा ले जाना उतना ही कठिन है, परन्तु केवल इसी के कारण जनता से जो श्रद्धा प्राप्त थी, वह आसानी से नही छोडी जा सकती थी। खद्दर मेरे लिए वह चटपटा भोजन हो गया था, जो अपनी तीक्ष्णता के कारण आँखो मे आँसू लाता है, फिर भी जीभ से नही छोडा जाता। मैंने रामदेव की बात का कोई जवाब न दिया। चुपचाप उसके साथ हो लिया। न जाने क्या सोचकर उसने भी कुछ नही कहा।

मेरे मन में विचारो की एक हलचल शुरू हो गई। जिस कुत्सित पथ पर आज मै जा रहा था, वह मेरे लिए बिलकुल नया था। अपने स्खलन की सारी जिम्मेदारी रामदेव के सिर डालकर मै निश्चिन्त होने की चेष्टा कर रहा था। विचार-प्रवाह के साथ-साथ मेरी चाल भी बढती जा रही थी।

बीच मे ही मेरी विचार-श्रृखला तोडकर रामदेव बोल उठा—अरे, अभी से ऐसा नशा चढ गया कि रास्ता भी भुला दिया! उसकी बात सुनकर मैंने चौककर देखा—जिस गली मे मुड जाना चाहिए था, उसे छोड़कर सीधा आगे बढ रहा हूँ। लज्जित होकर मैं उसके पीछे हो गया।

यह वह रात थी जो पूर्ण कलाधर को पूरा-का-पूरा निगलकर भी प्रकाश के लिए राक्षसी क्षुधा रखती है। म्युनिसिपैलिटी की दरिद्र लालटेने अपने ऊपर अधकार का 'ग्लोब' चढाकर टिमटिमा रही थी। ऊपर नक्षत्रो ने भी बादलो का आवरण चढा रखा था। यह कुछ बुरा न था, वरन् मेरी लज्जा ढकने के लिए यही सब से बडा आधार था।

अपनी दुर्बलता दूर करने के लिए मैंने इधर-उधर से खरोच-खरोचकर शक्ति इकट्ठा की। समय के विचार से उसे दुर्बलता ही कहना चाहिए—और क्या। कृष्ण ने अर्जुन को जिस प्रकार उद्बोधित किया था, कुछ-कुछ उसी प्रकार मैं भी अपने को सशक्त करने की चेष्टा कर रहा था।

मैं आगे बढता चला। सहसा मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे पीछे कोई लगा हुआ है। देखने के लिए मैंने पीछे की ओर गर्दन मोडी। गली के उस घोर अन्धकार मे दीखने को क्या था? फिर भी न जाने क्यो मुझे अनुभव हुआ कि मेरी स्वर्गीय माता अन्धकार के परदे मे छिपी-छिपी मेरे पीछे आ रही हैं। मेरा सारा शरीर कण्टकित हो उठा।

रामदेव ने फिर चुटकी ली। बोला—भाई, मुझसे छिपाकर चुपचाप मन के लड्डू क्यों उडा रहे हो? सच्चे लड्डू अभी तो सामने आये जाते है!

अपनी चिन्ता दूर करने के लिए मैं उससे बातें करने लगा। मैं स्वय नही सोच सकता था कि क्या कहना चाहिए, अतएव यदि उन असंबद्ध बातो को यहाँ न लिखूँ, तो आशा है, साहित्य की बहुत बडी हानि न हो जायगी।

अब हम लोग उस गली मे आ पहुँचे, जहाँ हमे जाना था—जहाँ नित्य-प्रति यौवन और श्री का विसर्जन होता रहता है। नीचे के खण्ड की दूकाने

प्रातःकालीन नक्षत्रों के जैसी हो रही थी, परन्तु ऊपर की दूकानों में अभी जागृति का श्रीगणेश ही हुआ था। अच्छा श्रीगणेश हुआ था! एक जगह से नूपुरों की झनकार आ रही थी, तो दूसरी जगह से मादक संगीत लहरी। एक ओर से सुन्दरी का मधुर हास्यालाप सुन पड़ता था, तो दूसरी ओर से किसी मत्त का असंबद्ध कंठ-स्वर। मैंने समझा कि इस पाप-वीथिका में अकेला मैं ही नहीं हूँ। मेरा साथ देने के लिए यहाँ एक-से-एक बढ़ कर मिल सकते हैं।

रामदेव रुककर खड़ा हो गया। बोला—अब हम यथास्थान आ गये। देखो, इन्हीं सीढ़ियों से हम ऊपर के स्वर्ग में पहुँचेंगे, परन्तु जरा ठहरो। पास की इस दूकान से पान ले लूँ। और हाँ, फूल भी। शुभ स्थान में बिना 'पत्र-पुष्प' के जाना ठीक भी नहीं है।

पाजी की कुटिल हँसी देखकर मेरे हाड़ जल उठे। वह आगे बढ़ गया। मैं वहीं खड़ा रहा।

दूकान सामने थोड़ी ही दूर पर थी। दूकानदार की बात मेरे कान में स्पष्ट पहुँची, यद्यपि वह धीमे स्वर में ही बोल रहा था—ये बाबू नये जान पड़ते हैं। ज्यादा तो नहीं पी गये? वहाँ क्यों रुक गये? यहीं बुला लो।

दूकानदार ने गलत नहीं कहा था। मेरे पास दर्पण न होने पर भी मैं अपने मुँह पर स्पष्ट देख रहा था, वह भाव जो मद्यपों का ही अपना हो सकता है। यदि मैंने मद्य-पान न किया होता, किसी तरह का भी क्यों न हो वह—तो यहाँ आज आता ही क्यों? उधर से दृष्टि हटाकर मैंने सीढ़ियों की ओर देखा। सोचने लगा—ये सीढ़ियाँ मुझे ऊपर ले जायँगी या किसी अतल गर्त्त में, जहाँ से कभी ऊपर उठ न सकूँगा? ऊपर के कमरे में समुज्ज्वल प्रकाश उद्दीप्त हो रहा था। उसे भी देखा। इस प्रकाश में आज मेरे लिए कहाँ का अन्धकार छिपा हुआ है, यह मैं निश्चय नहीं कर सका।

मेरा माथा उत्तप्त हो उठा। मैं टोपी के भीतर हाथ डालकर धीरे-धीरे

बालो पर फेरने लगा। एकाएक सनसनाता हुआ हवा का एक झोंका आया। मेरी टोपी उड़कर मेरे पैरो के पास आ गिरी।

शिव! शिव! यह क्या हो गया? मेरी यह टोपी वैसी नही है, जैसी सब कोई पहनते है। मेरी टोपी का एक इतिहास है। एक क्षण में कितनी ही वाते मेरे मस्तक मे घूम गईं। जब शुरू-शुरू मे खादी का मुझे शौक हुआ था, उस समय मेरी मा जीवित थी। एक दिन जाकर मैंने उनसे कहा—मा, मैं यह चरखा लाया हूँ। जिस तरह तुम्हारे हाथ के भोजन से मेरी भूख शान्त होती है, उसी तरह तुम्हारे हाथ के वस्त्र से ही मेरे शरीर को सुख मिलेगा! तुम सूत कात दो। मैं उसी का कपडा पहनूंगा। मा के काते सूत का एक ही थान वन पाया कि वे लौकिक माया-ममता छोडकर अनन्तधाम को चली गईं। उस कपडे का मूल्य आँकना मेरे लिए असभव था। वहुत सोच-विचारकर मैंने उसकी टोपियाँ ही टोपियाँ वनवा डाली। निश्चय किया था—माता का प्रसाद हमेशा मस्तक पर धारण किये रहूँगा। इस वस्त्र के प्रत्येक तार में मै माता के कर-स्पर्श का अनुभव किया करता था। हाय! आज मैं कुत्सित कृत्य करने पर उतारू हुआ हूँ कि माता का प्रसाद मेरे मस्तक से खिसककर पैरो पर लोटने लगा है। आज मुझसे जो अपराध हो गया है, उसका परिहार कहाँ है, मैं इस वात का निश्चय नही कर सका। हाय! मस्तक से ऊँचा स्थान कहाँ पाऊँ, जहाँ मा के प्रसाद को फिर स्थापित करके, उसके पैरो पर गिरने की ग्लानि दूर कर सकूँ!

रामदेव हाथ मे पान और माला लिये लौटकर वोला—अब चलो।

मैंने नीचे से टोपी उठा ली थी। झाडकर उसे वार-वार मस्तक पर लगा रहा था। रामदेव को देखते ही भभक उठा—वदमाश! यहाँ मुझे कहाँ ले आया? अच्छा देखूंगा!

रामदेव के मुँह पर विस्मय की एक झलक देखता हुआ मैं पागल की तरह भाग खड़ा हुआ। उस गली को पार करके बहुत दूर मैंने साँस ली। देखा, अन्धकार और भी घना हो गया है। आकाश मे एक भी नक्षत्र

नही दीख पडता था। परन्तु मैंने समझा——मै अनन्त प्रकाश के बीच में आकर खड़ा हुआ हूँ।

स्वप्न

'महात्माजी, सुरीला की जीवन-नौका की पतवार अब मै आपके हाथों मे देता हूँ। आपकी कृपा-दृष्टि के सिवा ससार में इस दुखिया के लिए दूसरा शान्ति का साधन नही है।'

'अपनी एकमात्र कन्या को अपने समीप न रखकर आश्रम मे छोड़ने के लिए विकल क्यो हो?'

'महात्माजी, कभी आप मेरे मित्र थे, मेरी जिन्दगी आप से छिपी नहीं है। आप महान् आत्मा हो; आपने अपने जीवन मे घोर परिवर्तन कर लिया है——आप तपस्वी हो। किन्तु मैं——मैं जो आज से वीस वर्ष पहले था, बिल्कुल वही हूँ। केवल इतना अन्तर हुआ है कि जिस दिन से सुरीला विधवा हुई है, मुझे अपने दुर्व्यसन नरकाग्नि के समान जला रहे हैं।

'महात्माजी, मै महानीच हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ, व्यभिचारी हूँ; किन्तु मेरी पुत्री सुरीला देवी है, लक्ष्मी है, पवित्रता की प्रतिमा है। गुरुदेव, उस पर दया करो। मुझे भय है कि मुझ पामर के दुर्व्यसनो का प्रभाव कही उसके पुनीत विचारो को दूषित न कर दे। अब तक वह पूर्णत ससार के ससर्ग मे नही आई है। वह कवि है, और किसी और लोक में विचरण करती रहती है, किन्तु नवयौवन का विकास उसे इस पापी ससार से परिचित कराके रहेगा। दव, उसकी पवित्रता की रक्षा करो। वह विधवा है। मैं उसका पतित पिता उसकी आत्मोन्नति का इच्छुक हूँ। मेरी अन्तिम अभिलाषा है, मेरी देवी समान पुत्री देवी ही बनकर रहे।'

महात्मा ने सुरीला को आश्रम मे रखना स्वीकार कर लिया।

❀ ❀ ❀

मामले ने बैरिस्टर दीक्षित ने न आया क आँसुओ को चिंता की, न बच्चो के मानसिक क्लेश की ! हाँ, बच्चो को स्वतन्त्रता थी कि जब इच्छा हो, आया के घर जाकर उससे मिल आया करे । उनके अन्य कर्मचारियो में जो सपत्नीक थे, उनके वेतन में वृद्धि के साथ उन्हे आज्ञा हुई कि अलग घर लेकर अपने परिवार को रखे ।

यहाँ तक कि बैरिस्टर साहब ने किसी स्त्री-मुवक्किल का केस भी लेना छोड दिया । अपनी कन्या सुनीता से बोर्डिङ्ग हाउस मे मिलने तक न जाते, क्योकि मुख्य अध्यापिका से मुलाकात किये बिना लडकियो से मिल सकना बोर्डिङ्ग हाउस के नियमानुसार सभव नही था । छुट्टियो मे सुनीता का बडा भाई उसे लिवा लाता, तभी पिता-पुत्री एक-दूसरे को देख सकते थे ।

इस प्रकार अनेक कठिन नियमों के आचरण मे वे अपने को छिपाकर रखने लगे ।

❀ ❀ ❀

बैरिस्टर दीक्षित अपने साथ इतनी सख्ती करने पर भी मानसिक सयम न रख पाते । हर समय मानसिक भावनाओ के साथ उनको घोर युद्ध करना पड़ता । दिन-भर किसी प्रकार विभिन्न कार्यो मे चित्त को उलझाये रखते, रात में गीतापाठ के साथ निद्रादेवी का आह्वान करते, फिर भी स्वप्न मे अतीत काल के हास-विलास के दृश्य अपनी छाया डाल ही जाते ।

श्यामाचरण वकील के यहाँ पार्टी है । कैलाशविहारी आगा की स्त्री रागिणी आज कैसी सज-धज कर आई है । रागिणी के रूप की बराबरी करनेवाली फैशनेबिल स्त्री जगत मे दूसरी नही है । धानी साड़ी मुख पर कैसी खिल रही है । ऐसे स्वप्न उनके चित्त को उद्विग्न कर जाते ।

बैरिस्टर साहब आफिस मे कानून का अध्ययन कर रहे हैं, और बाहर बरामदे मे कोई नया मुवक्किल मुहर्रिर से गुफ्तगू करता है, तो बैरिस्टर साहब की चितेरी कल्पना सब कुछ भुलाकर स्त्री का चित्र उनके सम्मुख खींचती । कोई सफेद साड़ी पहने विधवा होगी । पति की सम्पत्ति पर किसी ने अधि-

कार कर लिया होगा और अब रोटी देना भी अस्वीकार करता होगा। लाचार मुकदमें की बात सोचकर आई है। ध्वनि से भी स्त्री ही प्रतीत होती है; सकोच से धीरे-धीरे बोल रही है।

मुहर्रिर के द्वारा मशविरा तो दे दूंगा, किन्तु केस अपने हाथ मे नही लूंगा। उसी समय मुहर्रिर कमरे मे आता, बैरिस्टर साहब की निमग्नता में बाधा पड़ती; वे कुछ कम्पित हृदय से कल्पनानुसार सुनने की प्रतीक्षा करते। मुहर्रिर कहता—साहब छदम्मीलाल नामक एक मुवक्किल आया है।

लज्जा और ग्लानि से चित्त चचल हो उठता। वे सोचते—यह क्या है? पहले तो मेरी मानसिक स्थिति ऐसी दुर्बल नही थी। कुप्रवृत्तियो के पराजित करने के साधन उल्टे मुझे ही पराजित कर रहे है और मानसिक उन्नति के मार्ग से विमुख करके पतन के मार्ग की ओर आकृष्ट करते है। क्या उपाय करूँ भगवान्!

* * *

पुत्र-पुत्रियो के कर्त्तव्य से निवृत्त होकर बैरिस्टर दीक्षित ने सन्यास ले लिया। हिमालय की पहाडियो मे भ्रमण करते हुए एक पहुँचे हुए महात्मा से उनका साक्षात् हुआ। उसी दिन से उनके शिष्य हो गये।

महात्मा वास्तव मे एक दिव्य पुरुष थे। ससार से विरक्त होकर वर्षो उन्होने कठिन तपस्या की थी। बहुत दिनो तक मानव-समाज से परे भयानक जंगलो और दुर्गम पहाडो मे विचरण करते रहे थे, किन्तु अपनी साधना को सफलीभूत करके अब फिर मानव-समाज के उपकार की कामना से इस ओर आ गये थे। योगिराज की इच्छा एक आश्रम बनाने की थी, जिसमे भटकते हुए प्राणियो को शान्ति और अध्यात्मवाद का अध्ययन करने का अवसर मिले। साथ ही निर्धनो के लिए एक चिकित्सालय भी खोलना चाहते थे। उन्हे अनेक सजीवनी जड़ी-बूटियो का ज्ञान था।

बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग देकर योगिराज की

इच्छा पूरी की और स्वय भी उनके साथ आश्रम मे रहकर सेवा और उपासना मे तन्मय हो गये।

योगिराज की कृपादृष्टि से उन्हे पूर्ण शान्ति भी प्राप्त हुई, और थोडे ही दिनो मे कठिन अभ्यास और तपस्या के द्वारा वे एक महान् तपस्वी वन गये। योगिराज के अनेक शिष्यो मे बैरिस्टर दीक्षित का स्थान सर्वप्रथम था। चारो ओर उनकी ख्याति फैल रही थी। उन पर भी लोगो की श्रद्धा-भक्ति उनके गुरु से कम न थी।

योगिराज के शरीर छोड देने पर आश्रम ने गुरुदेव के पद के योग्य बैरिस्टर दीक्षित को ही समझा और उसी दिन से उन्हे महात्मा की पदवी भी मिल गई। अब वे बैरिस्टर दीक्षित नही, एक प्रसिद्ध महात्मा थे।

❀ ❀ ❀

सुरीला को आश्रम की सीढियो पर बिठाकर उसके पिता गुरुदेव के दर्शन करने गये थे। सुरीला सुदूर तक गंगा की उज्ज्वल जलधारा का अवलोकन करती हुई अपने विचारों मे निमग्न थी—पिता मुझे सन्यास लिवाना चाहते है; कहते है, इन महात्मा की कृपा से मुझे कृष्ण भगवान् के दर्शन हो जायँगे, मुझे शान्ति मिलेगी। जिन नटनागर के स्वप्न मे अपनी कविताओ मे अकित करती रहती हूँ, उनके दर्शन पाने से बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है, किन्तु पिता से विलग होना भी तो आसान नही है। और अपने अंदर अशान्ति तो मुझे कुछ प्रतीत होती नही। लोग मुझे दुखिया समझकर मुझ पर करुणा का भाव दिखलाते है, मेरे दुख पर आँसू बहाते है, पर मै तो वहुत सुखी हूँ। पिता मुझे कितना प्यार करते है? मेरे मा नही है, भाई-बहन भी नही है, मै अकेली हूँ, लेकिन यह अकेलापन अब तक तो कुछ अखरता नहीं है। कितने तो काम है, मुझे यह सोचने की फुर्सत ही कब मिलती है कि मै अकेली हूँ।

पति के मैंने दर्शन ही नही किये। कभी-कभी मन दुखी अवश्य होने लगता है। मेरा विवाह पिता ने इतनी छोटी उम्र मे क्यो कर दिया? विवा-

प्रत जाते समय पतिदेव मुझसे मिलने आये थे; पर लज्जावश मैं उनके समीप गई ही नही। वे नाराज होकर प्रात ही चले गये, और विदेश ही मे उनकी मृत्यु हो गई। यह ख्याल अवश्य हृदय को ठेस पहुँचाता है।

पिता को छोडकर मैं यहाँ कैसे रहूँगी? यह आश्रम तो मेरे घर जैसा भी नही है। गगा का किनारा होने से सुहावना अवश्य जान पडता है। मुझे यहाँ फुलवारी लगाने को कहाँ मिलेगी? कविताएँ भी शायद ही लिख सकूँ। महात्मा की आज्ञा पर ही तो चलना होगा न।

और फिर पिताजी को कितना कष्ट होगा? अँधियाले ही चाय पीते है। कोई नौकर भी इतना सवेरे न उठ सकेगा। और मेरी मैना मुझे न देखकर व्याकुल हो जायगी। मदनगौर बिना मेरे खिलाये आधा चारा भी नही खायगा।

कही नौकरो ने सध्या समय कबूतरो को बद नही किया, तो उन्हें बिल्ली खा जायगी। मेरे पीछे मेरी फुलवारी उजड जायगी। मेरी सारी चिडियाँ मर जायँगी। मिसरानी के बनाये खाने से पिताजी का पेट भी नही भरेगा। वे और भी दुबले हो जायँगे, खाँसी भी बढ जायगी।

सभव है, हर समय शराब ही पीते रहे। अभी तो मै बहुत देर तक उन्हें बातो मे लगा लेती हूँ, ताश खेलती हूँ, गाना सुनाती हूँ और सध्या को चिडियाखाने की सैर कराती हूँ। फिर संध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे। परमात्मा, क्या होगा? मै तो चुपके से शराब मे पानी मिला देती हूँ, मेरे पीछे खालिस शराब की पूरी बोतल ही पी गये, तो फिर मुँह से खून गिरने लगेगा। कुछ भी हो, मै यहाँ नही रहूँगी। मेरे पिता शराब पीते है, तो क्या हुआ? उनके बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है? कौन मुझे वैसा प्यार करेगा? मैं यहाँ किसी प्रकार भी नही रहूँगी; किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ? वे नाराज हो जायँगे, दुखी होगें। सोचते-सोचते सुशीला के सुदर नेत्रो से बडे-बडे मोती-जैसे आँसू टपकने लगे।

यहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दो मे जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीला आश्रम मे रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र-शीघ्र आने का वादा करके चले गये।

❀ ❀ ❀

सुरीला और शेखर मे मित्रता हो गई। आश्रम मे स्त्री-पुरुषो के परस्पर मिलने-जुलने के लिए कोई खास नियम नही था। सबको पूर्ण स्वतन्त्रता थी। दोनो आश्रम के कार्य, पूजा-उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल नादिनी गगा के तट पर बैठकर कविता लिखते, कभी वार्तालाप करते और कभी अध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद-विवाद करते। दोनो के विचारो मे किसी प्रकार की भी अपवित्रता नही थी। वे यथाशक्ति गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते। गुरु के उपदेशानुसार ही अध्ययन, उपासना तथा अभ्यास करते।

किन्तु गुरु को यह मैत्री खटकी। एक नवयुवक और नवयुवती का इस प्रकार हर समय का साथ; एक दूसरे के प्रति इतना अनुराग, उचित नही है। सयम मे विघ्न पड सकता है। शेखर अभी अभ्यास ही कर रहा है, तपस्वी नही बन पाया है, और सुरीला को तो आश्रम मे प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं। गुरुदेव ने अपने ये विचार किसी पर प्रकट तो नही किये, पर इन दोनों पर कड़ी दृष्टि रखना प्रारभ कर दिया।

उन्होने शेखर से कहा—पुत्र, मै तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान् तुम पर शीघ्र प्रसन्न होगे। अब वह समय आ गया है कि तुम कुछ दिनो तक एकान्तवास मे तपस्या करो। एक सप्ताह बाद तुम्हे एक पहाड की कन्दरा मे जाना होगा।

शेखर ने मस्तक नत करके गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की। गुरु ने सुरीला का स्थान नीचे से बदलकर छत पर अपने कमरे के समीप एक स्थान दे दिया। सुरीला के मन मे शका हुई—क्या गुरु ... ...ेह

करते है ?—किन्तु उसने स्वय ही अपने विचार की निन्दा की और गुरु की श्रद्धा-भक्ति मे किसी प्रकार का अन्तर नही आने दिया।

उस दिन रजनी दुग्ध-स्नान कर रही थी। उसके शरीर से दुग्ध-धारा ने बहकर सारी प्रकृति को श्वेत बना दिया था। उसी श्वेत वातावरण में हरी घास की सुकोमल शय्या पर बैठे सुरीला और शेखर वार्तालाप कर रहे थे। शेखर ने कहा—सुरीला, गुरुदेव की आज्ञा से अब मै एक मास के लिए एकान्तवास करने जाऊँगा।

सुरीला पर वज्रपात हुआ। उसे ऐसा जान पडा, मानो हृदय की धडकन बन्द हुई जाती है। वेदना उसके हृदय को मसलने लगी। वह भयभीत हिरणी की नाई छलकते आँसुओ से शेखर का मुँह निहारती रह गई।

सुरीला की यह दशा देखकर शेखर का मन भी जाने कैसा होने लगा; किन्तु उन्होने हृदय को दृढ करके कहा—घबराती क्यो हो? शान्ति से चित्त को एकाग्र करके रहो। गुरु के उपदेशो पर मनन करना, तुम्हारा चित्त सावधान हो जायगा।

सुरीला ने कहा—शेखर, तुम चले जाओगे, तो मै किसी प्रकार भी यहाँ न रह सकूँगी! मुझे पिता के यहाँ पहुँचा दो।

'नही, सुरीला, इतने दिनों के अभ्यास को इस प्रकार न तोडो। मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे अब तुम्हे अधिक समय दें। गुरु के उपदेशो से तुम्हे शान्ति मिलेगी।'

घबराकर सुरीला ने कहा—नही शेखर, ऐसा न करना; बल्कि गुरु से कहो, मुझे भी एकान्तवास की आज्ञा दें।

'ऐसा तो नहीं हो सकेगा, सुरीला! गुरुदेव तुम्हे एकान्तवास मे जाने की आज्ञा नही देगे। अभी तुम उस कठिन तपस्या मे सफल न हो सकोगी।'

'शेखर, मैं यहाँ नही रहूँगी। मुझे क्षमा करना शेखर, गुरु से मुझे एक प्रकार का भय लगता है। उनसे अधिक मुझे तुम पर . '

बीच ही मे बात काटकर शेखर ने ताडना के शब्दो मे कहा—कैसी बातें करती हो, सुरीला! गुरुदेव पर भक्ति करो।

कॉपते हुए स्वर से सुरीला ने कहा—शेखर, मैंने अनेक बार देखा है, गुरु छिपकर हम दोनो की बाते सुनते है।'

'तो दोष क्या है? हम लोगो पर दृष्टि रखना गुरु का कर्त्तव्य है।

सिसकते हुए सुरीला बोली—इतना ही नही, शेखर, रात्रि में मुझे कई बार शुबहा हुआ, किवाड की दराज मे से कोई मेरे कमरे मे झाँकता है। तुमने जो अपना चित्र बनाकर मुझे दिया था, वह मेरे कमरे मे कोई चुरा कर ले गया। मुझे यह काम गुरु का ही जान पडता है। मै यहाँ नही रहूँगी, या फिर तुम कुछ दिनो के बाद जाना।

सुरीला सिसक-सिसककर रोने लगी। क्षण भर मौन रहने के बाद उसने शेखर से कहा—शेखर, मेरा मन तुमसे भय नही खाता है।

इस सरलता पर शेखर ने हँस दिया और इस समय इस प्रसग को भुलाने के लिए उसने कहा—आओ, कुछ देर रामायण का पाठ करे।

❀ ❀ ❀

सुरीला रामायण गाने लगी। शेखर आधा लेटा हुआ सुनने लगा। पुष्पवाटिका का मनोरम प्रसग चल रहा था। दोनो तुलसीदास के भक्तिरस का स्वाद ले रहे थे, बिल्कुल रामायण में तन्मय थे।

और गुरु! गुरु छत की खिडकी पर आधी रात मे दोनो के बीच का भेद लेने बैठे थे। जाग्रत अवस्था मे ही गुरु को स्वप्न-सा भान हुआ—यह सुरीला कितनी सुन्दर है, मानो सौन्दर्य स्वय देवी रूप मे प्रकट हुआ है। रागिणी का रूप इसकी छाया के बराबर भी न था।

गुरु चौक पडे। आज वर्षो बाद अतीत काल की स्मृति क्यो हिलोरे लेने लगी? 'हरि ओ३म्' उच्चारण करके गुरु ने आकाश पर हँसते हुए चन्द्रमा को देखा और फिर क्षितिज पर बैठी हुई सुरीला पर दृष्टि डाली। उन्हें ऐसा ज्ञान पडा, मानो चन्द्रमा का कुछ भाग टूटकर सुरीला बन

गया है। उन्हें प्रतीत होने लगा कि भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अश ही नही, रामायण की सीता भी है, विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दर्यवती रति भी है। गुरु बेसुध होकर, भक्तिसागर में डूबकर, राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनामृत का पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था मे कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान न सके। कुक्कुट ने मदमाती बाँग से ऊषा के आगमन की सूचना दी, तो शेखर ने कहा—सुरीला, उठो, आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगो की पारी है। मै पानी लाता हूँ, तुम चलकर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।

गुरु खिड़की पर सर रखे निद्रा मे निमग्न थे। यह समय तो उनका वायु सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिए गुरु के जागने की प्रतीक्षा मे द्वार पर खडी रही। गुरु मनोरजक स्वप्न देख रहे थे—वृन्दावन विजन वन मे चन्द्रदेव पूर्ण कलाओ से शोभायमान है। मनोमुग्धकारी रजतचन्द्रिका विपिन को सौरभ दान कर रही है, और उसी विमल चाँदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करनेवाले भगवान् कृष्ण दाहिने कर मे मुरलिका लिये नृत्य कर रहे है, और उनके बाये पार्श्वमे प्रियतमा राधिका शोभा पा रही है।

अनेक देवताओ के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प-वर्षा कर रहे है। भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण ने मुरलिका ऊपर उठाकर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति मे उन्मत्त होकर गुरु विमान से कूद पडे और भगवान् ने उन्हे अपने मे लीन कर लिया। अब भगवान् कृष्ण और गुरु जुदा नही थे।

फिर एक बार राधिका के मुखपर दृष्टि डालकर मुरलीमनोहर ने कहा—प्रिये, संसार मे तुम सुरीला थी और मैं महात्मा था। अभी मृत्युलोक में फिर चलकर प्राणियो का उद्धार करना है।

इतना कहकर भगवान् पूर्ण गति से नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त कर वे राधिका को लेकर फिर ससार मे चले आये। अभी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नही हुआ था।

राधिका बोली—प्राणेश, क्या मुझे अभी और विलग रहना होगा ? इस बार की जुदाई तो सीता-वनवास से भी अधिक हो गई, देव !

कृष्ण ने राधिका को आलिगन कर लिया और बोले—नही प्रिये, अब हम-तुम साथ रहकर ही पृथ्वी का उद्धार करेगे ।

जागकर भी गुरु को चेतना नही हुई। उन्मत्त की भाँति सुरीला का हाथ पकडकर बोले—राधिका, प्रिये. . .

सुरीला गुरु का हाथ झटककर चीखती हुई भागी—मुझे बचाओ, शेखर !

शेखर जल की बाल्टी लेकर सीढियाँ पार कर चुका था। वह दृश्य देखकर अप्रतिभ-सा रह गया। उसी समय सुरीला बिजली की भाँति टूटकर उसके पैरो के समीप गिर पडी। बाल्टी की कोर माथे मे भुक गई और खून की धारा बह निकली ।

बेसुध-सी सुरीला को गोद से लेकर शेखर आश्रम से बाहर हो गया। सारे आश्रम मे कोलाहल मच गया। घटना का पता लगाने के लिए आश्रम-वासी गुरु के समीप गये, लेकिन दरवाजे बन्द थे। सबो ने समझा, गुरु समाधि मे है । शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियो से विदा माँग ली।

❀ ❀ ❀

पिता से चिमटकर सुरीला खूब रोई। पिता भी रोने लगे !

'अच्छा किया, आ गई सुरीला ! अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है ।'

बात करते-करते उनके मुँह से लाल-लाल रक्त बहने लगा । शेखर उपचार मे लग गया। सुरीला और भी बिलख उठी—मुझे अपने से जुदा करके तुमने अपनी क्या गति कर ली पिताजी !

❀ ❀ ❀

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

'शेखर, सुरीला ने मेरी आँखे खोल दी। मै भ्रम में था। जिसे अब तक स्वप्न समझा था, वास्तव मे हकीकत थी, और जिसे हकीकत समझा था, वही स्वप्न था। मुझे अपने मार्ग का दिग्दर्शन अब हुआ। मै जाता हूँ और आश्रम का भार तुम दोनो पर छोडता हूँ। तुम सुरीला से विवाह कर लो, तुम्हारा कल्याण होगा। मानुषिक प्रेम द्वारा ही तुम्हे दिव्य प्रेम का परिचय मिलेगा। प्रवृत्तियो के दमन करने से नही, बल्कि उन्हे आध्यात्मिक रूप मे परिवर्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होगी। यही तुम्हारे गुरु का अन्तिम उपदेश है।'

शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान ने स्वप्न मे दर्शन दिये, और कहा—ज्ञान, मैंने तुम्हे अपना प्रतिनिधि बनाकर ससार मे भेजा है। उठो, ससार का पुनर्निर्माण करो।

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, ससार अन्धकार मे पड़ा है और मानव जाति उस अन्धकार मे पथभ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खडा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ। भगवान का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।

लेकिन किसी ने उसकी बात नही सुनी। कुछ उसकी ओर देख कर हँस पड़ते; कुछ कहते, पागल है, अधिकाश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

❋ ❋ ❋

आखिर तग आकर वह एक अँधेरी गली मे छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बडा शत्रु है धर्म, उसी से लडना होगा।

तभी पास कही से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पडा है, जो या तो बेहोश है या मर चुका है, क्योकि उसके शरीर मे किसी प्रकार की गति नही है।

ज्ञान ने पूछा—बहन, क्यो रोती हो?

उस स्त्री ने कहा—मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और दृढ हो गया। उसने कहा—तुम मेरे साथ आओ, मै तुम्हारी रक्षा करूँगा।—और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार शुरू किया। उसने कहा—धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमे सीमा मे रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग रखता है, अत शत्रु है?

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने साथ रखता है, उसकी बात हम क्यो सुने? वह समाज से पतित है, नीच है।

तब लोगो ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया।

❀ ❀ ❀

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लडने के पहले समाज से लडना है। जब तक समाज पर विजय नही मिलती, तब तक धर्म का खडन नही हो सकता।

तब वह इसी प्रकार करने लगा—वह कहने लगा—धर्मध्वजी, ये पुजी-पुरोहित, मुल्ला, ये कौन है? इन्हे क्या अधिकार है हमारे जीवन को

बाँध रखने का ? आओ, हम इन्हे दूर कर दे, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करे, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ सके।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड ले गये। क्योकि वह वर्गों मे परस्पर विरोध जगा रहा था।

❀ ❀ ❀

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती मे इन विदेशियो के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओ को स्थायी बनाये रखते है, और लाभ उठाते है। पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब..और वह गुप्त रूप से विदेशियो के विरुद्ध लडाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने खाकी कपडे पहने हुए था। मुख पर झुर्रियाँ पडी थीं, आँखो में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा—आप मुझे कुछ काम दे, ताकि मै अपनी रोजी कमा सकूँ। मै विदेशी हूँ। आपके देश मे भूखा मर रहा हूँ। कोई भी काम मुझे दे, मै करूँगा, आप परीक्षा ले। मेरे पास रोटी का टुकडा भी नही है।

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नही है, मैं भी भूखा हूँ।

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला—अच्छा, मैं आपके दुःख से बहुत दुखी हूँ। मुझे अपना भाई समझे। यदि आपस मे सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ ?

❀ ❀ ❀

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है, पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा...

और उसने 'भूख के लडाको' का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरो से धन छीनकर सबमे समान रूप से वितरण करना, भूखो को रोटी देना इत्यादि, लेकिन जब धनिको को इस बात का पता चला तब उन्होने एक दिन चुपचाप अपने चरो द्वारा उसे पकडवा मँगाया और एक पहाड़ी किले मे कैद कर दिया। वहाँ एकान्त मे वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबेना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ-सा जान पडने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असभव है? यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना बेमानी!

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ गया। बाहर खाई मे भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया, और उसने यह निश्चय कर लिया कि वह उसमे कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे ससार मे मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी मे देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी मे उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है—बस, अपने आपसे लड चुके?

❀ ❀ ❀

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और किले मे चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बडी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते है।

एक सप्ताह

गुलमर्ग

१३ श्रावण.

प्यारे कमल,

मुझे माफ करना, उस दिन शाम की चाय के समय तुम मेरा इन्तज़ार करते रहे होगे, और मै इधर खिसक आया। आज तुमसे ११०० मील की दूरी पर और तुम्हारे कलकत्ता महानगर से ९००० फीट अधिक ऊँचाई पर बैठकर मै तुम्हे यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम जानते ही हो कि मै किस तबीयत का आदमी हूँ। उफ, वहाँ कितना बोझ था। काम, काम, हर वक्त काम। मेरी तबीयत सहसा ऊब गई और तुम्हे तक सूचना दिये बिना मै अपनी कार पर इतने सफर के लिए खिसक आया। उस दिन चाय के वक्त मुझे मौजूद न पाकर यद्यपि तुम मुझ पर काफी खीझ तो लिये ही होगे, फिर भी उस असुविधा के लिए मुझे माफ कर देना।

हिमालय की यह विशाल घाटी बडी सुहावनी है। घने जगल, निर्मल झरने, विस्तृत मैदान, चारो ओर बरफ से ढके पहाडो की ऊँची-ऊँची चोटियाँ और दूर पर दिखाई देनेवाली वलर झील। इस स्थान से मै सचमुच प्यार करता हूँ। यह एक सप्ताह बिल्कुल निकम्मा रहकर काटूंगा। कुछ नही करूँगा। केवल तुम्हे ही पत्र लिखूंगा और तुम्हारे पत्रो को छोड कर और कुछ भी नही पढूंगा।

भाई कमल, मै अकेला हूँ। तुमने अनेक बार मेरे इस अकेलेपन की आलोचना की है; मगर यहाँ आकर मैं अनुभव करता हूँ कि जैसे प्रकृति मेरी मा है। मै अकेला कहाँ हूँ, मै तो अपनी मा की गोद में हूँ।

चिन्ता न करना। मैं यहाँ एक सप्ताह से अधिक नही ठहरूँगा। २२ श्रावण की शाम को तुम मुझे अपनी चाय की टेबिल पर ही पाओगे। बाहर एक कसा हुआ घोड़ा मेरा इन्तजार कर रहा है, अत. बाकी कल।

तुम्हारा—
स०

(२)

गुलमर्ग
१४ श्रावण ..

भाई कमल,

सुबह ९ बजे बिस्तरे से उठा हूँ। अभी तक नीद की खुमारी नही टूटी। कल बहुत दिनो के बाद घुडसवारी की थी, अत टाँगें कुछ थक गई-सी प्रतीत होती है। आज कही नही जाऊँगा। मेरे मकान में और कोई नही है। मै अपने सोफे पर अकेला पडा हूँ। धीमी-धीमी वर्षा हो रही है। चारो तरफ सन्नाटा है। ओह, सामने की इस खिडकी से कितना अनन्त सौन्दर्य मुझे दिखाई दे रहा है।

आज कुछ नही लिखूंगा। सोचा था कि आज एक चित्र बनाऊँगा, मगर कुछ नही करूँगा। घण्टो तक इसी तरह निश्चेष्ट भाव से पडे रहकर इस खिडकी की राह से प्रकृति का, अपनी मा का अनूठा सौदर्य देखूँगा।

अच्छा, कल तक के लिए विदा।

स्वेच्छाधीन—
स०

(३)

गुलमर्ग
१५ श्रावण .

कमल,

इस समय रात के ११॥ बजे है, और मेरी आंखो मे नीद नही है। सब तरफ गहरा सन्नाटा है। कही से कोई आवाज नही आ रही है। मेरे

कमरे मे बिजली की बत्ती जल रही है। खिड़कियाँ बन्द है। सरदी इतनी अधिक है कि मै उन्हें खोलकर नही रख सका। सन्नाटा इतना गहरा है कि बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे इस कमरे में बैठकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे इस सपूर्ण विश्व मे केवल मैं-ही-मै बच रहा हूँ, और कोई भी नही है। कही कोई भी नही है। सिर्फ मै ही हूँ; अकेला मै।

मगर भाई कमल, आज सहसा, न जाने क्यो, मुझे अपना यह अकेलापन कुछ अनुभव-सा होने लगा है। ऐसा क्यो हुआ ? क्या सिर्फ इसलिए कि सब ओर सन्नाटा है और मेरी आँखो मे नीद नही है ? नही कमल, यह बात नही है। मेरे हृदय मे आज सहसा एक नई-सी अनुभूति उठ खडी हुई है, जो बिल्कुल धुँधली और अस्पष्ट-सी है। मै अनुभव करता हूँ कि मैंने आज जो कुछ देखा है, उसमे विचित्रता जरा भी नही है। मैंने जो कुछ आज देखा है, उसे यदि मै यहाँ लिखूँगा, तो या तो तुम मेरा मज़ाक उड़ाने लगोगे, अथवा मेरे सम्बन्ध मे बिलकुल भ्रांत-सी धारणा बना लोगे। मगर भाई, मै कहता हूँ, मै तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम इन दोनो मे से एक भी बात न करना। मेरी इस चिट्ठी को पढ जाना, और अगर हो सके तो उसी वक्त भुला देना। बस, और कुछ नही।

हाँ, तो सुनो। बात है तो कुछ भी नही, मगर फिर भी सुनो। आज दोपहर के वक्त बादल जरा छँट गये थे, और सूरज निकल आया था। जैसे विधाता ने इस हरी-भरी घाटी को धो-धोकर धूप मे सुखाने के लिए बिछा दिया हो। दोपहर के भोजन के बाद अपनी इस छोटी-सी कोठी के खुले सहन मे धीरे-धीरे चहल-कदमी करने लगा। सहन के फाटक के सामने ही स्वच्छ जल का एक छोटा-सा झरना बह रहा है। उस ऊपरके अनघड़ लकडी का एक इतना सुन्दर पुल है कि उसे देखते ही कलरबक्स लेकर उसका चित्र बनाने की इच्छा होती है। मै धीरे-धीरे एक बार इस पुल तक जाता था, और उसके बाद कोठी के बरामदे तक वापस लौट आता था।

एक वार के चक्कर मे जब मै पुल के निकट पहुँचा, तो मै चौक पडा। मैने देखा, वहाँ किसी भद्र कुल की एक नौजवान लडकी खडी थी, अकेली। उसका ध्यान मेरी ओर नही था। झरने के पानी की मधुर ध्वनि ने मेरे चलने की आवाज को अपने भीतर छिपा लिया था, इससे मेरे वहुत निकट पहुँच जाने पर भी वह यह न जान सकी कि उसके निकट कोई अन्य व्यक्ति भी मौजूद है और मुझे तो तुम जानते ही हो। कितना भूला हुआ-सा चलता हूँ। मुझे तब तक उस लडकी की उपस्थिति का ज्ञान नही हुआ, जव तक मै उसके विल्कुल निकट पहुँच नही गया।

मै चौका, और उधर उसी समय उस लड़की की निगाह मुझ पर पड़ी। शायद बिल्कुल ही अकस्मात्। वह भी चौक गई। क्षण-भर के लिए सहसा उसकी और मेरी आँखे आपस मे मिल गईं।

वस, भाई कमल, वात इतनी ही है, और कुछ भी नही। मै उसी क्षण वापस लौट पडा था, और जान पडता है, वह लडकी भी वहाँ से चल दी थी, मगर इस जरा-सी बात ने न जाने क्यो मेरे दिल पर बहुत अजीव-सा प्रभाव डाला है। इस वात को हुए अव ९ घण्टे वीत चुके ह, और इन ९ घण्टो मे चौकी हुई हरिणी की-सी वे आँखे मरे मानसिक नेत्रो के सामने वीसियो वार घूम गई है।

तुम सोचते होगे, इस सबमे कोई खास वात जरूर है। और नही तो कम-से-कम वह लडकी कोई असाधारण सुन्दरी तो अवश्य ही होगी, मगर वास्तविकता यह नही है। उस लडकी के चेहरे मे असाधारणता जरा भी नही थी। लम्वा कद, मामूली चेहरा, गेहुआँ रग। और भी कोई वात उसमें ऐसी नही थी, जिसे असाधारण कहा जा सके। अपने नगर मे हम लोग इस कन्या से अत्यधिक रूप-सौदर्यवाली बीसियो युवतियो को रोज देखते है। मेरी परिचित कुमारियो मे भी कितनी ही सौदर्य की दृष्टि से उससे कही वढ-चढकर है। यहाँ गुलमर्ग मे भी उससे वहुत अधिक सुन्दरियो को

मैंने काफी बड़ी संख्या में देखा है। फिर भी! कुछ समझ में नही आता कि इस 'फिर भी' का कारण क्या है।

आज इतना ही।

तुम्हारा—
स०

(४)

गुलमर्ग
१६ श्रावण...
प्रातः ८ बजे

कमल,

नीद से उठते ही सबसे पहले मेरी निगाह रात के पत्र पर गई है। रात मैं क्या खुराफात-सी लिख गया। दिल में आता है, वह पत्र फाड डालूँ।

जी कुछ भारी-सा है। कुछ लिखने की भी इच्छा नही होती। और इस तरह निश्चेष्ट भाव से यहाँ चुपचाप पड़े रहना तो आज मुझे सह्य भी नही हो सकता। तुम जानते हो, ऊपर की दो लाइनें लिखने में मैंने कितना समय लगाया है? पूरे २२ मिनट। इस समय दूसरा पत्र लिख सकना मेरे लिए असभव है। चलो, अब कही आवारागर्दी करने जाऊँगा।

साय ६ बजे।

मेरा जी इस समय बहुत प्रसन्न है। मेरी टाँगे, मेरा सपूर्ण शरीर बिल्कुल थकी हुई हालत मे हैं; परन्तु जी चाहता है कि मैं इस समय भी नाचूं, कूदूं और इधर-उधर दौडता फिरूँ। मेरे हृदय मे इस समय उत्साह का अन्धड-सा चल रहा है, मुझे मालूम है कि उसकी प्रतिक्रिया भी जरूर होगी। अपने जी के इस व्यर्थ उत्साह को बहकाने का मुझे इससे बढ़कर और कोई उपाय नही मिला कि सुबह का पत्र पूरा करने बैठ जाऊँ।

साँझ हो आई है। आज का सारा दिन मैंने सैर-सपाटे मे काटा है। थोडी ही देर पहले घर वापस आया हूँ। तुम्हारी चिट्ठी बीच मे छोड़कर मैं

एक मजबूत घोड़े पर सैर के लिए निकल गया था। यहाँ के सभी मार्ग मेरे जाने-पहचाने हैं, इससे कोई मार्ग-दर्शक भी मैंने अपने साथ नही लिया था। मेरे निवास-स्थान से करीब ८ मील की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ी झरना है। इस झरने को यहाँ 'निगली नाला' कहते है, मैं आज इसी निगली नाले तक गया था।

खूब टेढी-मेढ़ी राह है। कही पहाड़ो के चक्कर हैं, कही घास से मढ़े मैदान, कही ऊँचाई-निचाई, कही पेंचदार मोड और कही घने जगल। रास्ता क्या है, ऊवड-खावड-सी एक पगडडी है। पर मैंने अपना घोड़ा खूब निश्चिन्ती के साथ दौडाया। ऊपर असंख्य पक्षियो का मधुर कलरव था। राह के दोनो ओर फूल-पत्तियाँ थी। हवा में सुगन्ध थी। आसमान मे सूरज बादलो के साथ आँखमिचौनी खेल रहा था। कभी सरदी बढ़ जाती थी और कभी हल्की-हल्की धूप निकल आती थी। शीघ्र ही मैं निगली नाले पर पहुँचा। झरने के दोनो ओर घना जगल है। बीच में बड़ी-बडी चट्टाने पडी हैं। एक-एक चट्टान सैंकडों-हजारो टन की होगी। झरने का स्वच्छ जल इन भीमकाय चट्टानो से टकरा कर शोर मचाता है, फिसलता है और फिर उछल-उछल कर इन्हे गीला करता है। झरने की शीतलता, झाग, सफेदी और शोर—ये सब निरन्तर बने रहते हैं। सदा ताजे, सदैव उत्साहपूर्ण।

घोडे को घास चरने के लिए खुला छोड़कर मैं दो-तीन घण्टो तक झरने की चट्टानो पर स्वच्छन्दता-पूर्वक कूदता-फाँदता रहा। अपने कैमरे से इस झरने के मैंने अनेक फोटो भी लिये। खाया, पीया और उसके बाद वापस लौट चला।

वापसी में मैंने अपने घोड़े को सरपट नही दौडाया। राह के दृश्यो ने मेरा सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, अत. घोड़े पर मैंने किसी तरह का शासन नही किया। वह आजादी के साथ, चाहे जिस चाल से, चलता रहा। सहसा सामने की ओर से मुझे एक चीख-सी सुनाई दी।

मेरी तन्मयता भग हो गई। मैंने देखा, सामने के मैदान मे एक घोड़ा बेतहाशा दौडा चला जा रहा है, और उस पर एक स्त्री सवार है। घोड़े की ज़ीन को, लेटी हुई-सी दशा मे कसकर पकडे हुए वह नारी सहायता के लिए भरसक चिल्ला रही थी। उसी निगाह मे मुझे यह भी दिखाई दिया कि पगडण्डी पर तीन-चार अन्य घुड़सवार भी मौजूद है। सब-की-सब लडकियाँ ही। वे सब असमर्थों का-सा भाव धारण किये अपने काश्मीरी कुलियों को वह घोड़ा पकडने का आदेश दे रही थी।

एक ही क्षण मे मैंने अपना घोड़ा उसी ओर दौड़ा दिया और शीघ्र ही उस स्त्री-सवार के निकट जा पहुँचा। अपने घोड़े पर से कूदकर मैंने उस घोडे की लगाम पकड ली।

फिर वही आँखे !

मै सहसा घवरा-सा गया। मुझे यह भी नही सूझा कि मै क्या कहकर उस कन्या को आश्वासन दूं। मगर मेरी घबराहट की ओर उसका ध्यान नही गया। वह स्वयं ही बहुत अधिक संकटापन्न दशा मे जो थी।

पहले उसी ने मुझे धन्यवाद दिया। मालूम होता है, उसने मुझे पहचाना नही। धन्यवाद देकर उसने शीघ्रता से कहा—बडा नटखट घोड़ा है! मै पहले ही कह रही थी कि मै इस पर सवार न होऊँगी।

उसकी आवाज मे अभी तक भय की कँपकँपी थी। मैंने कहा—आपने बड़ी हिम्मत दिखाई है। घोडे की इतनी तेज़ी हो जाने पर भी आप गिरी नही।

वह इस पर लजा-सी गई। उसने कहा—मैं घुड़सवारी तो क्या जानूं। सुना था, इधर के घोडे बहुत सीधे होते है।

इसी समय उसके साथ की अन्य लडकियाँ और घोडेवाले कुली भी वहाँ आ पहुँचे। घोडे की लगाम अभी तक मेरे हाथो मे थी, और लड़की भी अभी तक घोड़े की पीठ पर ही थी। एक काश्मीरी ने लगाम अपने हाथो मे थाम ली और दूसरे ने ज़ीन को सँभाला। वह लड़की नीचे उतर

आई। उसके साथ की सब लडकियो ने मुझे धन्यवाद दिया, और मैंने कहा कि इसमे धन्यवाद की बात ही क्या है।

उन्होने मुझसे पूछा—आप किस जगह ठहरे हुए है ?

मैंने अपना पता बता दिया।

मेरे निवास का पता सुन कर जैसे उस लडकी ने मुझे पहचान लिया। उसके मुँह से हठात् निकला—ओहो ! परन्तु उसी क्षण अपने को पूर्णत संयत करके उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा—मै समझ गई।

इसके बाद दो-चार मामूली-सी और बाते भी हुईं, और तब वे लोग निगली नाले की ओर बढ गये। जाते हुए वे कल प्रात. के लिए मुझे अपने यहाँ चाय के लिए निमन्त्रित भी करते गये।

उस नटखट घोडे की रास अब एक काश्मीरी के हाथ मे थी। वे सब घोडे अब बहुत धीमी चाल से जा रहे थे, और वह घोडा सबसे पीछे कर दिया गया था। मेरी नजर अभी तक उसी ओर थी कि कुछ ही दूर जाकर उस लडकी ने पीछे की ओर घूमकर देखा।

अचानक एक बार पुन' मेरी और उसकी नजर मिल गई।

ओह, फिर वही निष्पाप, लज्जाभरी, स्वच्छ आंखे !

भाई कमल, मुझे नही मालूम कि वे लडकियाँ कौन है। सभी नव-युवतियाँ है। मेरा अनुमान है कि उनमे से अभी तक किसी का विवाह नही हुआ है। मै उनमे से किसी का नाम भी नही जानता, मकान का पता देने के लिए केवल एक पुरुष का नाम ही उन्होने मुझे बताया है। मै यह नही जानता कि वे आपस मे बहने है, सहेलियाँ है, एक साथ पढनेवाली है, या रिश्तेदार है। मुझे कुछ भी नही मालूम। परन्तु एक बात मैंने अच्छी तरह देख ली। वह यह कि उस लडकी के गेहुँए चेहरे मे असाधारणता जरा भी नही है। उसकी आँखो मे, पलको या भौहो मे ऐसी कोई बात नही है, जिसके सम्बन्ध मे कवि लोग बडी-बडी उपमाएँ खोज-खोजकर

दिया करते हैं। फिर भी उसकी निगाह में कुछ है। क्या है—यह मैं नहीं कह सकता; मगर कुछ है जरूर।

बाहर अँधेरा हो गया है। सरदी भी अब अनुभव होने लगी है, अतः प्रणाम।

अभिन्न—
स०

(५)

गुलमर्ग
१७ श्रावण...

प्यारे कमल,

आज जाकर मुझे तुम्हारा पहला पत्र मिला है। तुम सच मानो, गुलमर्ग के छोटे-से बाजार के साइनबोर्डों के अतिरिक्त यही एक पहली चीज है, जिसे मैंने इन पाँच-छै दिनों में पढा है।

मेरा आज का दिन भी बड़े आनन्द से गुजरा है। सुबह-सुबह मैं उन लोगों के यहाँ चाय पीने गया था। उसके बाद हम लोग एक साथ खिलनमर्ग की सैर के लिए निकल गये। यहाँ घण्टों तक उस खुले मैदान में बैठ कर ताश खेला किये, सैर की, खेले-कूदे और फिर वापस लौट आये। सब लोग मेरे निवास-स्थान पर आये। शाम की चाय यहाँ ही हुई, और अभी-अभी मैं उन्हें उनके घर तक छोड़कर आ रहा हूँ।

मुझे उनका परिचय भी मिल गया है। वह लड़की अपने भाई और एक चचेरी बहन के साथ; काफी दिन हुए, यहाँ आई थी। उसके पिता एक सम्पन्न व्यापारी हैं, उनका कारोबार खूब चलता हुआ है। वह लड़की लाहौर के एक महिला कालेज मे पढती है, और बाकी तीनो लडकियाँ उसके क्लास की हैं, उसकी मित्र हैं और उसी के निमन्त्रण पर यहाँ आई हैं। उसके भाई का स्वभाव भी बड़ा मधुर है। गुलमर्ग में उसके दोस्तो की इतनी अधिकता है कि उनकी ओर से छुटकारा पा सकना ही उसके लिए कठिन

हो जाता है। हम लोग आपस में खूब हिलमिल गये हैं। मैंने उन लोगों के अनेक फोटो भी लिये हैं।

आज जल्दी ही सो जाने को जी चाहता है। तुम्हारा पत्र इस समय मेरी आंखों के सामने नहीं है। कुछ याद नहीं आ रहा है कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी थी या नहीं। चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो पूछ ही नहीं सकते।

यह भी नामुमकिन नहीं कि मैं कुछ और ठहर जाऊँ।

स्नेही—

स०

(६)

गुलमर्ग

१८ श्रावण

कमल,

सांझ डूबने को है। दिन भर से आसमान में बादल छाये हुए थे। इस समय मूसलधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द हैं। कमरे में बत्ती जल रही है। मेरे कानों में एक संगीत गूँज रहा है—बहुत करुण, बहुत पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत में शब्द नहीं, केवल स्वर हैं। स्वर भी क्या केवल गूँज है। छत की टीन पर वर्षा पड़ने की जो एक-सी आवाज हो रही है, वह इस गूँजमय संगीत का साज है और ठंडी, गीली हवा की धू-धू इस संगीत की तान का काम कर रही है।

मैं अकेला हूँ। दिन-भर अकेला नहीं था, परन्तु इस समय फिर से अकेला हूँ। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहां आई थी। ६ बजे के करीब उसके भाई चाय के एक निमन्त्रण पर बाहर चले गये। वह और उसकी बहन यहां ही रह गईं। कलवाले फोटोग्राफ धुलकर आ गये थे। उन फोटोज की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही। और भी बीसियों तरह की बातें हुईं। शाम का अँधेरा जब बढ़ने लगा, तो मैंने उससे

अनुरोध किया कि वह कोई गाना सुनाये। बडी झिझक के बाद उसने एक गाना मुझे सुनाया। ओह, वह कितना मधुर गीत है। मै किसी दूसरे लोक मे जा पहुँचा। मुझे नही मालूम कि सगीत कब समाप्त हुआ। हाँ उसके भाई साहब का आना मुझे जरूर याद है। देर हो गई थी, अत वे लोग लौटने को हुए। मैंने उन लोगो को सहन के फाटक से ही विदा दे दी। उन्हे छोडने के लिए दूर तक केवल इसी लिए साथ नही गया, क्योकि मुझे ज्ञात था कि उसके भाई साहब चुपचाप चलना पसन्द नही करेंगे, और इस समय मै न कुछ कहना चाहता था, न बोलना चाहता था।

उन्हें गये थोड़ी ही देर हुई थी कि जोर की वर्षा शुरू हो गई। मैं तब से इसी कमरे मे बैठा हूँ। सगीत कभी का थम गया, गानेवाली भी चली गई; मगर उसकी गूँज अभी तक बाकी है—उसी तरह जीवित रूप में बाकी है। सगीत की वह अनिर्वचनीय अमूर्त गूँज वर्षा की आवाज का प्राकृतिक साज पाकर मानो और भी अधिक भेदिनी बन गई है।

कमल, तुम मेरे सुख-दुःख के साथी हो। अपनी सभी अनुभूतियाँ तुमसे कहकर मै अपने चित्त का बोझ हलका किया करता हूँ, मगर यह एक अनुभूति कुछ ऐसी है कि इसे मै ठीक तौर से व्यक्त भी नही कर सकता। मेरे जी मे आँधी-सी चल रही है, मगर यह आँधी बिल्कुल शब्द-रहित है जैसे नदी का वेगवान् पानी अन्दर-ही-अन्दर से किनारे के कछारो को काट रहा हो।

अपनी एक पुरानी धुँधली-सी अनुभूति मुझे इस समय साफ तौर से समझ मे आ रही है। हम मनुष्यो के बाह्य-जीवन आपस में एक दूसरे पर इतने अधिक आश्रित हो गये है कि हम लोगो के लिए इस तरह का एक दिन भी काटना सभव नही रहा, जब कि एक मनुष्य का किसी भी दूसरे मनुष्य से किसी तरह का वास्ता न पड़े। इस पर भी मै सदैव अनुभव करता रहा हूँ कि हम लोग आपस मे एक दूसरे से बहुत अधिक दूर हैं। हृदयों का यह पारस्परिक अपरिचितपन हमारे दैनिक व्यवहार में, हमारे सामान्य

जीवन मे कोई बाधा नही डालता। फिर भी हमारे जी को, हमारे अन्त.करण को और शायद हमारी अन्तरात्मा को कभी यह चाह रहती है कि वह किसी दूसरे जी को, किसी दूसरे अन्त करण को अपना ले। यही चीज़, अन्तरात्मा की यही चाह, प्रेम है, जिसे वासना का परिधान पहनाकर हम लोग बहुत शीघ्र मैला कर डालते है। आज इस सगीतमय, ठडे शान्त और सुन्दर-तम वातावरण मे मै यह अनुभव करने लगा हूँ कि मेरे अन्त करण मे भी इसी तरह की कोई बेचैनी सहसा उठ खडी हुई है।

आज उससे मेरी खूब बाते हुई। अधिकाश बाते बिल्कुल बेमतलब की थी, मगर फिर भी वे बाते अत्यन्त मधुर और दिल को सहलानेवाली थी।

एक बात ऐसी भी हुई, जिसने मेरे हृदय को वेग के साथ झनझना दिया। बातचीत मे उसने ज़रा हैरानी के साथ मुझसे पूछा—आप अकेले ही रहते है?

मैने कहा—हाँ।

उसने पूछा—हमेशा इसी तरह रहते है?

मैने कहा—प्राय हमेशा ही।

कुछ क्षण के बाद उसने मुझसे पूछा—सुबह आपको दूध पिलाने का काम किसके हाथो मे है?

मुझे उसका भोला-सा सवाल बहुत ही मधुर जान पडा। मैने कहा—जो लोग मेरी ज़रूरत की और सब चीज़ो का इन्तज़ाम करते है, वे ही दूध का इन्तज़ाम करते है।

उसने फिर पूछा—आप सुबह खाते क्या है?

मैने कहा—दूध, टोस्ट, मक्खन, शहद, ओवलटीन और थोडे-से मेवे।

योंही बिल्कुल निष्कलक भाव से उसने ज़रा आग्रह के स्वर से कहा—अगर मै आपके दूध का इन्तजाम करनेवाली होती, तो आपको पता लगता कि सुबह के कलेवे मे कितना स्वाद आता है।'

मेरा सपूर्ण अन्त करण झनझना उठा। अपने चेहरे पर हल्की-सी और

फीकी मुस्कराहट ले आने के अतिरिक्त मै उसकी इस अत्यन्त मधुर बात का कोई जवाब नही दे सका।

मुझे मालूम है कि उसने जो कुछ कहा था, इसका कोई गहरा अभिप्राय कदापि नही था। सभवतः घर के लोगो को सुबह दूध पिलाने का इन्तजाम उसी के जिम्मे होगा; मगर फिर भी मेरे दिमाग ने उसकी इस बात को इतनी गहराई के साथ हृदय के पास पहुँचाया कि मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण बहुत ही मीठे स्वरो में ध्वनित हो उठा।

हाथ ठिठुर रहे है। मेरी यह चिट्ठी पढकर तुम कही ऊबने तो नही लगे? ठीक है न? या अभी कुछ और सुनने की इच्छा है?

मगर नही, अब और नही।

तुम्हारा—
स०

(७)

गुलमर्ग
१६ श्रावण...

भाई कमल,

इस समय सुबह के ८ बजे है। मेरा सामान बँधकर तैयार पडा है। सहन मे एक कसा हुआ घोड़ा और सामान के टट्टू तैयार खडे है। मै इसी वक्त नीचे के लिए रवाना होने लगा हूँ। बस, तुम्हे यह पत्र लिखकर मै घोडे पर सवार हो जाऊँगा। यह भी पूरी तरह मुमकिन है कि इस पत्र से पहले ही मै स्वयं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ।

कल मैने इरादा किया था कि कम-से-कम पाँच दिन यहाँ और ठहरूँगा। उन लोगो से भी मैने यही बात कही थी। आज दोपहर को मुझसे मिलने के लिए उन्हें यहाँ आना भी है, मगर आज सुबह नीद से बहुत जल्दी जागकर मैने यही निश्चय किया कि मुझे यहाँ से चल ही देना चाहिए। इस आशय की एक चिट्ठी उनके नाम पर भी डाल रहा हूँ कि

एक अप्रत्याशित कार्य के लिए मुझे इस तरह, बिल्कुल अचानक अपने नगर के लिए रवाना होना पड रहा है ।

तुम इस चिट्ठी को पाकर अथवा चौथे दिन मुझे ही अपने समीप देखकर हैरान होगे कि बात क्या हुई । कहने को तो मैं तुम्हे भी यही कह सकता हूँ कि अधिक दिन बाहर रहने से काम-काज मे हर्ज होता, इसी से चले आना पडा; परन्तु दरअसल बात ऐसी नही है । बात वास्तव में इतनी ही है कि अपनी शिक्षा और अपनी परिस्थितियो के सस्कारो से बाधित होकर ही मै आज यहाँ से चल दिया हूँ ।

कुछ समझे ? नही, मुझे यकीन है कि कमल का मोटा दिमाग मेरी इस महीन बात को जरा भी नही समझा होगा ।

देखो न, भाई कमल, बात यह है कि पश्चिम की शिक्षा ने, पश्चिम के रीति-रिवाजो ने, हमे यह सिखाया है कि हमे अपने दिल को, अपने अन्त:-करण को, और अपनेपन को बहुत महँगा बना लेना चाहिए । हम सबसे मिले-जुले, सबसे मीठी-मीठी बाते करे, सबसे फायदा उठाये, इच्छा हो और सभव हो, तो लोगो से सभी तरह के विनोद और आमोद भी प्राप्त करे; परन्तु अपना अन्त.करण अपना हृदय अपने ही पास रखें, क्योकि वह हमारी चीज है, और किसी की भी नही । अपने दिल को बिल्कुल निस्संग बनाने की भी आवश्यकता नही है; वह तो आत्म-विनोद का सर्वश्रेष्ठ साधन है । तुम सब से मिलो-जुलो, हँसकर, खुलकर, मीठी-मीठी बाते करो, मगर किसी के बन मत जाओ, अपना सब कुछ किसी को अर्पित मत कर दो । व्यक्तित्व को भावुकता की जहरीली गैस से मूर्छित न होने दो ।

मैने यह अनुभव किया है कमल, कि मेरे हृदय मे भावुकता बाकी है, वह भी काफी मात्रा मे । मेरा हृदय मोह मे पड गया है । पूरब के अशिक्षित मनुष्यो के समान वह चाहता है कि वह जिसकी ओर झुका है, उसी का बनकर रहे; मगर मेरे दिमाग की शिक्षा ने मेरे जी को यह चेतावनी

दी है कि प्रेम का उद्देश्य सर्वस्व समर्पण की भावना नही, अपितु आत्मविनोद-मात्र है। परन्तु मुझे भय है कि इस खास मामले में मै अपने मस्तिष्क के आदेश का पालन शायद ही कर सकूँ। इससे मैने निश्चय किया है कि मै अपने को इस कठिन परीक्षा मे न डालूँ और यहाँ से चल दूँ। देखूँ, इस सबका परिणाम क्या होता है। देखूँ, गुलमर्ग को भुला सकता हूँ या नही। अब तो आ ही रहा हूँ। वेफिक्र रहो। मै नये युग की उपज हूँ।

अभिन्न—
स०

मैना

अलियार जव मरा, तो दो पुत्र, छोटा-सा घर और थोडी-सी जमीन छोडकर मरा। दसवे के दिन दोनों भाई क्रिया-कर्म समाप्त करके सिर मुडाकर आये, तो आने के साथ ही बँटवारे का प्रश्न छिड गया। और इस समस्या के समाधान के लिए इतने जोरो से लाठियाँ चली कि दोनो भाइयो के मुडित मुड फूट गये।

दोनो भाइयो ने इस प्रकार एक दूसरे का सिर फोडकर अपना-अपना अपमान मान लिया। बड़े भाई 'मुसाफिर' की धारणा थी कि छोटे भाई ने सिर फोडकर मेरा भारी अपमान किया है। छोटे भाई 'जगन' की भी यही शिकायत थी कि बडके भइया ने बडी मजबूत लाठी से मेरा अपमान किया है। दोनो ने प्रतिज्ञा की कि इस अपमान का बदला नहीं लिया, तो मेरा नाम नही।

किन्तु अपमान के प्रतिशोध के लिए मुक़दमा लडने को किसी के पास पैसे नही थे। केवल लाठियो का भरोसा था; लेकिन इसका मौका नहीं था। दोनो ही सतर्क रहते थे। खैर, किसी प्रकार दोनो भाई अपने उसी घर में,

एक म्यान मे दो तलवार की तरह रहने लगे, लेकिन एक म्यान मे दो तलवारो के रहने से तलवारो का उतना नुकसान नही होता, जितना कि बेचारे म्यान का। दोनो का क्रोध अपने घर ही पर उतरता था। मुसाफिरराम को ज़रूरत हुई, तो छोटे भाई के लगाये हुए कुम्हडे और करैले की लताओ को तहस-नहस करके अपनी गोशाला बना ली। इधर जगन ने आवश्यक समझते ही बडे भाई के भडार-घर को तोड़ कर दरवाजे के साथ मिला दिया। घर तोडने की खबर सुनते ही मुसाफिरराम अपने भाई का सिर तोडने के लिए तैयार हो गये, किन्तु गाँववालो ने बीच-बचाव करके झगडा शान्त कर दिया।

यह लडाई केवल पुरुषो तक ही थी, यह बात नही है। स्त्रियो मे भी ऐसा घमासान वाग्युद्ध होता था जिसका ठिकाना नही।

हाथ चमकाकर, माथा मटकाकर, नथ हिलाकर, ऐसी-ऐसी गालियो की बौछार की जाती थी, जिसका अमृतरस लूटने के लिए गाँव की सारी महिलाएँ एकत्र हो जाती थी। मुनिया को आदमी का माँस खाना अभीष्ट नही था, फिर भी बडी तेजी से निनाद करके रधिया को धमकी देती थी—तेरा भतार खा जाऊँगी! रधिया भला अपनी चीज़ कैसे दे सकती थी? चट से कहती—मेरा भतार क्यो खायगी, तेरा मुस्टडा तो अभी जीता ही है, उसी को चबा! इसी प्रकार दोनो देवरानी-जेठानी साहित्य के नवरसो से भिन्न गाली-रस की सृष्टि करती थी।

यह लडाई-झगडा, गाली-गलौज, एक-दो दिन रहता, तब तो ठीक; यहाँ तो महीने की लम्बी डग मारता हुआ साल चला गया। घर और बाहर सभी इस झगडे से ऊब उठे। गाँववालो ने कहा—भाई, तुम लोग आपस मे क्यो इतना झगडा करते हो? अपनी-अपनी चीज़े बराबर बाँट लो, बस झगडा खतम हो गया।

दोनो ने सकार लिया, बात ठीक है।

आखिर एक दिन गाँववालो की पचायत जमा हुई। सब कुछ देख-भाल कर दुखहरन पांडे ने, तम्बाकू फाँकते हुए फैसला सुना दिया। और तब

आँगन के बीच में दीवार खींच दी गई। घर की कोठरियों को गिन-गिनकर अलग किया गया। हल, बैल, खेती, बारी सब कुछ अलग-अलग हो गये। अब कोई भाई किसी से बोलना भी पसन्द नहीं करता था। एक दूसरे को देखते ही घृणा से मुँह फेर लेता था।

(२)

उपर्युक्त घटना को दो वर्ष बीत गये।

बिल्ली की तरह घर-घर घूमनेवाली पद्मिनी काकी एक दिन मुसाफिर के घर में जाकर बोली—मुँह मीठा कराओ, तो एक बात कहूँ !

रधिया ने उत्सुकता से पूछा—कौन बात है काकी, कहो न ?

'तुम्हारा भतीजा होनेवाला है।'

रधिया का चेहरा घृणा से सिकुड़ गया। क्रोध से जल उठी। मुँह बिचकाकर बोली—अय नौज, चूल्हे-भनसार में पड़े भतीजा, और देवी मइया के खप्पर में जायँ हमारे देवर-देवरानी। इनको बेटी-बेटा हो, इससे हमको क्या और नहीं हो, इससे क्या। अगर इन लोगों का बस चले, तो हम लोगों को न जाने कब फाँसी लटका दें। ये लोग जैसे अपने हैं, उससे गैर ही कहीं अच्छे।

इस प्रकार रधिया ने भली-भाँति साबित कर दिया, कि इससे मुझे तनिक भी खुशी नहीं और पद्मिनी काकी का मुँह मीठा खाने लायक नहीं है।

यह बात बड़े विस्तारपूर्वक मुनिया के निकट पहुँची। रधिया जलती है, यह सुनते ही उसे एक ईर्ष्यामय आनन्द हुआ। बोली—अभी से उस कलमुँही के कपार में आग लग गई, तब तो लड़का होने से वह छाती फाड़कर मर जायेगी !

जगन घर में आया, तो उसे भी यही समाचार सुनना पड़ा। सुनकर उसे हर्ष नहीं हुआ। घृणा से जी छोटा हो गया। अपने भाई-भौजाई होकर भी ये लोग कितने नीच हैं ! बोला—वे लोग तो जन्म के जलन्त, उनकी बात को लेकर कहाँ तक क्या किया जाय ?

उन दिनो पद्मिनी काकी प्रतिदिन, एक नई सनसनीदार घटना की खबर लेकर, मुनिया के निकट उपस्थित होती थी। आज रधिया देवी मैया के मन्दिर में धरना देने गई है, कि तुम्हारे पेट का लडका नष्ट हो जाय। आज एक ओझा बुलाया गया है। बड़ा नामी ओझा है। उसके मन्तर का मारा हुआ पानी भी नही पीता। भगवान् जाने क्या होगा। रोज इसी प्रकार की नई घटनाओ का उल्लेख करके वह मुनिया से कुछ-न-कुछ जोग-टोट के लिए झटक ही लेती थी।

किसी प्रकार इन मारण-मोहन-उच्चाटन-वशीकरण से घोर युद्ध करता हुआ, कई महीनो का सुदीर्घ समय व्यतीत हो गया। आज मुनिया को लड़का होनेवाला है। उसकी वर्षों की मुराद पूरी होगी। खाली गोद भर जायगी। जगन के इष्टमित्र भी चहक रहे थे—भाई, भर-पेट खिलाना पड़ेगा, यहाँ पौने तीन सेर से छटाक-भर भी कम नही खाते। जगन प्रसन्नता-पुलकित होते उत्तर देता—अरे, इतना खिलाऊँगा कि खाते-खाते पेट फट जायगा। भीतर गाँव की बडी-बूढी स्त्रियाँ बच्चे की सेवा-सुश्रूषा कर रही थी। अन्य महिलाएँ स्वयसेविकाओ की तरह दूसरे-दूसरे काम में व्यस्त थी; किन्तु न मुसाफिर का पता था और न रधिया का। बाहर एक आदमी ने जगन से कहा—इस समय तुम्हे सब वैर भूलकर अपने भाई को बुलाना चाहिए था। जगन ने उत्तर दिया—बुलाया भाई, पचासों दफे आदमी भेजा, खुद गया, जब आते ही नही, तो क्या करूँ?

भीतर की औरतें आपस मे कह रही थीं, ऐसे समय में आदमी सब लागडाट भूल जाते हैं। भाई-भौजाई होकर भी वे लोग नही आये।

इस समय भी मुनिया कहने से न चूकी—चूल्हे में जायँ वे लोग, नही आये, यही अच्छा हुआ?

उस समय रधिया अपने घर मे चिन्ता से चूर बैठी थी। ईर्ष्या से उसका कलेजा जल रहा था। बार-बार भगवान् को दोष दे रही थी, उसे क्यो लडका हो रहा है, मुझे क्यो नहीं हुआ?

मुसाफिर को तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उसका सर्वस्व लुट गया। अगर कही लड़का हुआ, तो मेरे घर-द्वार का भी वही मालिक होगा। आज तक उसने कभी अपने नि सन्तान होने के विषय मे नही सोचा था। किन्तु अब यही बात, तीर की तरह, उसके हृदय को बार-बार वेध रही थी। गाल पर हाथ रखे वह इन्ही ईर्ष्यामय विचारो में मग्न था। पडोस का शोर उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे यह सब आयोजन उसी को चिढाने के लिए किया गया है।

इसी समय मालूम हुआ कि जगन के यहाँ लड़की पैदा हुई है।

मुसाफिर ने एक लम्बी साँस खीचकर कहा—जाने दो, लडका नहीं पैदा हुआ, यह अच्छा हुआ।

यह उसके मन की वह प्रवृत्ति थी, जो निराशा की डाल पर भी सन्तोष के घोसले बनाती है।

(३)

समय-पंछी उड़ता हुआ छ. वर्षों का पथ और भी पार कर गया।

जगन की लडकी मैना अपने द्वार पर बैठी हुई धूल के घरौंदे बनाती और बिगाडती नजर आती थी। उसे देखकर मुसाफिर को क्रोध नही आता था, एक प्रकार का ममत्व जागृत हो उठता था। जी में आता था कि उस धूलि-धूसरित बालिका को गोद मे उठाकर चूम लें। वह दूर से बैठकर उसकी बाल-क्रीड़ा को देखता था और फूला न समाता था। मैना को गोद में लेने की बलवती इच्छा को वह कैसे दबाता था, यह उसके सिवा और किसी को नही मालूम।

असाढ़ रथ द्वितीया के दिन, उसी के गाँव के समीप, करौंदी में मेला लगता था। उस मेले मे कोई खास बात नही थी। जगन्नाथ स्वामी के मन्दिर में खूब घड़ियाल-घण्टा बजाकर उनकी पूजा होती थी। सन्ध्या के समय, मनुष्यों के रथ पर लादकर, देवताओ को एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में पहुँचा दिया जाता था। आसपास के सभी गाँववाले वहाँ एकत्र होते थे,

काफी भीड जुट जाती थी। मुसाफिर भी वहाँ गया था। वहाँ खिलौनो की दूकान देखकर ठिठक गया। इच्छा हुई कि मैना के लिए कुछ खिलौने लेता चलूँ। फिर सोचा—मगर इसके लिए कही जगन या उसकी बहू कुछ कह दें तब? उसने इच्छा को बलपूर्वक त्याग दिया और आगे बढा। आगे भी खिलौने की दूकान थी, एक-से-एक अच्छे खिलौने भलीभाँति सजाकर रखे हुए थे। मुसाफिर रुक गया और दूकान की ओर देखने लगा। खिलौने सभी सुन्दर थे, जिस पर दृष्टि जाती थी, उससे आँखो को हटाना कठिन था। यदि इनमें से एक भी खिलौना मैना को मिले, तो वह कितनी खुश होगी! मुसाफिर की कल्पना की आँखो के आगे मैना उसके दिये हुए खिलौने को लेकर छाती से लगाये हुए दिखलाई पडने लगी। वह इसी आत्मविस्मृत दशा मे दूकान के सामने जाकर खड़ा हो गया। एक खिलौना उठाकर पूछा—इसका कितना दाम है?

'छ. आने।'

मुसाफिर को मानो होश हुआ। यह खिलौना मै किसके लिए खरीद रहा हूँ। उसी के लिए जो मेरे वैरी की लडकी है! मगर अब क्या करता? दाम पूछ चुका था, अगर वहाँ से योही चल देता तो बडी हेठी होती।

टाल देने के लिए बोला—तीन आने मे देते हो तो दे दो।

'अगर लेना ही है तो चार आने से कौडी कम नही लूँगा।'

अब तो सिर्फ चार पैसो पर बात अटक गई। अगर ले ही लूँ, तो क्या होगा। मेरा दुश्मन जगन है कि उसकी लडकी! बेचारी का क्या कसूर। जैसे वह जगन की लड़की है, वैसे ही मेरी लडकी है। बेचारी को मैंने कभी कुछ नही दिया। लोग अपने भतीजे-भतीजी को लाख-दो-लाख दे देते है, अगर मैंने एक चार आने का खिलोना ही दे दिया, तो क्या दिया!

मुसाफिर जब खिलौने को खरीदकर चला, तो उसके हृदय मे जितना उल्लास था, उतनी ही झगडे की आशका भी थी।

साँझ के समय घर पहुँचा। मैना उस समय अपने पिता से पाई हुई सीटी बजा-बजाकर खुश हो रही थी। इसी समय मुसाफिर जाकर उसके सामने खडा हो गया। खिलौना हाथ पर रखकर कहा—देख बेटी, यह खिलौना तेरे लिए लाया हूँ, पसन्द है ?

मैना खुशी से नाच उठी। बोली—हाँ चाचा, खूब पसन्द है; अबकी मेले मे जाओगे, तो मेरे लिए एक हाथी, एक खरगोश और एक कछुआ लेते आओगे ?

'अच्छा लेता आऊँगा—कहकर मुसाफिर ने उसे गोद मे उठाकर चूम लिया।

मैना बोली—तुम बडे अच्छे आदमी हो चाचा, तुम मेरे लिए मेले से खिलौना ला देते हो, गोद मे लेकर दुलार करते हो।

मुसाफिर ने स्नेह से पूछा—और तेरा बाप दुलार नही करता ?

मैना सिर हिलाती हुई बोली—नहीं, वह दुलार नही करता, वह तो मुझ गोद मे भी नहीं लेता।

(४)

एक दिन मुसाफिर गोद मे मैना को लिये घर के भीतर गया, तो रधिया बोली—तुम्हारे रंग-ढग मुझे अच्छे नहीं लगते।

मुसाफिर ने सहज उत्सुकता से पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

'पराई बेटी के पीछे काम-धन्धा छोडकर, दिन-रात पागल बने फिरते हो। अगर अपनी बेटी होती तो क्या करते ! कल खेत पर भी नही गये, सारा दिन बाँस की गाड़ी बनाने मे बिता दिया।'

मुसाफिर ने हँस कर कहा—पराई बेटी कैसे हुई ? क्यों मैना, तू दूसरे की बेटी है ?

मैना ने सिर हिलाकर कहा—नही।

'तब किसकी बेटी है ?'

मैना उसके गले मे अपनी दोनो बाहे डालकर बोली—तुम्हारी !

मुसाफिर मुस्कराता हुआ गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला—देखती हो ?

रधिया ने कहा—सब देखती हूँ; लेकिन अगर कुछ हो गया, तो यही समझ लो कि तुम्हारे सिर का बाल भी नही बचेगा। जो कुछ असर-कसर बाकी है, वह भी पूरी हो जायगी।

मुसाफिर ने मैना को चूमकर कहा—मेरी बेटी को क्यो कुछ होगा, जो कुछ होना होगा, सो इसके दुश्मन को होगा। क्यो बेटी ?

मैना ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति जता दी।

रधिया ने मुह फुलाकर कहा—एक दफे कपार फुटवा ही चुके, अबकी मालूम होता है, मूँछे उखड़वाओगे।

मुसाफिर के दिल मे कुछ चोट लगी। उसने सिर उठाकर कहा—तुम तो मैना को फूटी आँखो भी नही देख सकती। यह मेरी गोद मे नही आये, तब तुम्हारा कलेजा ठढा रहेगा।

रधिया तीव्र स्वर मे बोली—कौन कहता है कि मैना मुझे फूटी आँखो नही सुहाती ? बोलते कुछ लाज भी लगती है कि नही ! लडके-बच्चे भी किसी के दुश्मन होते है ! मैना को देखती हूँ, तो गोद मे लेने के लिए तरसकर रह जाती हूँ, मगर करूँ तो क्या, इसके मा-बाप ऐसे हैं, जिनसे दुश्मन भी भला। छोड देती हूँ, कौन जाने मैना को दुलार करने से हमारी मालकिनजी राँड-निपूती कहने लगें।

इसी समय मैना अपने चाचा की गर्दन झकझोरकर बोली—चाचा, चाचा, चलो गाडी पर चढाकर टहला दो।

'चल !'—कहता हुआ मुसाफिर उसे लिये हुए घर से बाहर चला गया।

उस दिन मैना गाडी पर चढकर खूब घूमी, लेकिन जब उसकी छोटी-सी गाडी समस्त गाव की परिक्रमा करके लौटी, तो उसे कुछ ज्वर-सा हो आया था। मुसाफिर ने देखा कि उसका शरीर कुछ गर्म है। बोला—घर चली जाओ बेटी, शायद तुम्हे बुखार आयेगा।

मैना जिद करने लगी—नही चाचा, थोडा और घुमा दो। थोड़ा-सा। फिर घर चली जाऊँगी।

'नही नही, अब घर जाओ।'

मैना मलीन मन गाडी से उतर कर घर चली गयी। उस दिन वह बहुत उदास हो गई थी। चाचा यदि थोडा और घुमा देते तो क्या होता?

(५)

दूसरे दिन, मुसाफिर दिन-भर मैना को नही देख सका। मालूम हुआ कि उसे ज्वर हो आया है। मुसाफिर दिन-भर बहुत ही उदास रहा। खेत पर भी नही जा सका। बैल भूखे थे, उन्हे सानी देने की भी याद नही रही। मालूम होता था, जैसे वह निर्वासित कर दिया गया है। मैना के बिना उसे अपना जीवन सूनसान और भयावना प्रतीत होता था। वह जहाँ बैठा था, दिन भर वही बैठा रह गया। रात हुई तो रधिया आकर बोली—आज खाओगे नही क्या?

'ना, आज भूख नही है।'

'तुम तो मुफ्त मे अपनी जान गँवा रहे हो। जिन लोगो के लिए प्राण हत रहे हो, उन्हे तो तुम्हारी परवाह नही है। यह किसी से नही हुआ कि तनिक बुलाकर दिखला देते। हाय री बच्ची, कल ही भली-चगी थी, आज न-जाने कैसे क्या हो गया! मेरा तो जी चाहता है कि जाकर एक बार देख आती।'

मुसाफिर प्रसन्न होकर बोला—चली जाओ न, देखती आना।

रधिया ने कहा—जाती तो; लेकिन महारानीजी से डर लगता है कि कही डाइन कहके बदनाम न कर दे। और तुम्हारा सपूत भाई भी कम नही है। ना, मै नही जाऊँगी; तुम्ही जाओ।

'तुम्हारे जाने से लोग बुरा मानेगे, तो क्या मेरे जाने से भला मानेंगे?'

'तो जाने दो, मगर चलो खा लो। ऐसे कब तक रहोगे?'

'जब तक मन करेगा।'

'भगवान् लोगो को दुख देते है, तो क्या सभी खाना छोड़ देते है ? दुनिया का काम तो सभी को करना ही पड़ता है ।'

'खाऊँगा तो जरूर; लेकिन अभी भूख नही है ।'

रधिया निराश होकर चली गई। मुसाफिर वहाँ बैठा-बैठा क्या सोच रहा था, यह वही जाने; लेकिन जब रात भीग गई, दस से ऊपर हो गये और रात्रि के सन्नाटे मे कुत्तो का भूँकना जारी हो गया, तब मुसाफिर जगन के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया। दीवार से कान लगाकर, बहुत देर तक मैना की बोली सुनने की चेष्टा की; किन्तु निष्फल ही रहा। अन्त में निराश होकर घर लौट आया और चुपचाप सो गया।

मैना तीन-चार दिनों तक तो बुखार मे डूबी रही, पाँचवे दिन सन्निपात हो गया। बचने की आशा जाती रही। मुसाफिर यह सब सुनता था और मन-ही-मन हाय करके रह जाता था।

आखिर एक दिन मुनिया के क्रन्दन से जगन का घर गूँज उठा। मुसाफिर के हाथ-पाँव फूल गये। वह पागल की तरह दौडा हुआ जगन के आगन में पहुँच गया। घबराया हुआ बोला—जगन, जगन, क्या हुआ ? जगन रोता हुआ घर से निकला—भैया, हम लुट गये, भैया, मैना !. .

मुसाफिर भी कातर भाव से हाहाकार करके रो उठा, हाय मेरी बेटी !

जब लोग मैना की लाश को उठाकर ले चले, उस समय मुनिया भी सिर के बाल खोले पागलो की तरह रोती हुई जा रही थी। हाय रे ! मेरी भली-सी बच्ची को लेकर तुम लोग कहाँ जा रहे हो ? लाओ, उसे मुझे दो, वह दूध पीकर चुपचाप सो जायगी। हाय रे, मेरी बच्ची ! . सुनो... सुनो तो..

इसी समय रधिया अपने घर से दौडती हुई निकली और मुनिया को पकड़ लिया। उसे अपनी छाती से लगाकर बोली—न रोओ बहन, न रोओ ! भगवान् ने हम लोगो को दु.ख दिया है, तो सहना ही पड़ेगा।

इस समय तक शव ले जानेवाले आँखो की ओट हो चुके थे।

—:o—

प्यासी हूँ

कोई बारह बज चुके थे। दुनिया के पर्दे से स्वप्न की रानी झाँक रही थी—विजेता की भाँति, उसके नूपुर के मिलन-गीत से पृथ्वी मूर्छित-सी होती जाती थी।

वकील केशव के उस बड़े मकान के सभी कमरो की बत्तियाँ बुझ चुकी थी, केवल सहाना का कमरा तब भी बिजली-शिखा से उज्ज्वल हो रहा था। मखमल के काउच पर कुत्ते के बच्चे को लिये वह बैठी थी। पलग के सफेद रेशम के बिस्तर को किसी ने छुआ तक नही था, गुलदस्तो के फूलो की मीठी सुगन्ध से कमरे की हवा व्याकुल हो रही थी; गुलाबजल से बसे पान के बीड़े अनादर से रकाबी पर ही सूख रहे थे, दीवाल पर के आयलपेंटिंग चित्रों के नीचे की दीप-शिखाएँ उस गहरी रात में कुछ म्लान-सी हो रही थी, शायद नीद से उनकी आँखें भी अलसा रही हो; किन्तु उसकी पलकों मे नीद की एक हलकी-सी छाया भी न थी। वह उस बच्चे को सुला रही थी, परम आदर के साथ। कभी उसे आदर, प्यार, सोहाग से बेचैन कर देती, तो कभी उसे हृदय से लगाती, मुँह चूमने लगती। वह भूल बैठी थी पति के अस्तित्व को, जो कि कुछ ही दूर आराम कुर्सी पर अधलेटे हुए नारी हृदय की ममता की प्यास को, मातृत्व की बुभुक्षा को अपलक नेत्रो से देख रहा था। उसकी दृष्टि जीवन्त विस्मय से विमूढ हो रही थी। मुकदमे के कागज वैसे ही इधर-उधर पड़े थे, उस ओर ध्यान देने योग्य उस समय उसके मन की स्थिति नही थी।

आज अचानक नही, परन्तु कई दिनो से केशव शायद अपनी भूल कुछ-कुछ समझ रहा था। एक अनजान दर्द, एक अपरिचित अभाव से वह कभी

बेचैन हो जाता, चेष्टा करने पर उसकी समझ मे बात नही आती कि वह व्यथा, वह अभाव किस लिए और क्यो है? वह अनजान-सा बना रहता।

पत्नी का दीर्घ श्वास, कुत्ते के प्रति उसकी वह लालायित दृष्टि केशव के अन्तर के किसी गोपनीय अश मे आघात कर बैठी, जुही की झाडी आँखो के सामने से हट गयी, मोती-जैसे फूल बिखर गये। गत-दिवस के वे रगीले दृश्य चल-चित्र के समान सामने अड गये, जहाँ कि एक नारी रूप, रूप-गन्ध-पूर्ण अपने सुगठित यौवन की मदिरा भरे कलस को लेकर उसी के पैर तले बैठी वर्षो विनिद्र रजनी बिता दिया करती थी, नारी रूप-उपासक के पैरो मे अपने श्रेष्ठ मातृत्व तक को न्योछावर करने में जिसने विचार तक नही किया था, पति की तुष्टि के लिए जिसके नयन, प्रत्येक रोम सदा खुशी की वर्षा किया करते थे, नूतनत्व-विहीन सम्पूर्ण लुटी हुई नारी वह यही है। वाहरी जगत के तीव्र आकर्षण, करोडो कामो मे पिसकर, जिसे कि आज बासी माला की तरह दूर फेक देना पडा है, वह दूसरी नही—यही है—यही, यही। जिसे कि आज इस विलासिता के अन्दर तपस्विनी गौरी की तरह जागते ही रात बितानी पड रही है, कुत्तो और बिल्ली के बच्चों को लेकर मा की प्यास—केशव जबरन ही हँस पडा। अपने आपको डाँटने लगा—यह सब वह क्या सोच रहा था? वह आश्चर्य मे था कि ऐसे विचार उसके मन मे उठे ही क्यो?

उस हँसी से सहाना चौकी—अभी सोओगे? बत्ती बुझा दूँ?

'नही, अभी कागज देखना है।'

'क्या रात-भर काम ही करते रहोगे? दो बज रहे है।'

'किन्तु अभी तक तो तुम्हारे खेल को देख रहा था। बुढापे में कुत्तो के पिल्लो से खेलते तुम्हे शर्म नही आती, लोग कहेगे क्या?'

सहाना ने सहमी हुई आँखे उठाई—उसकी माँ मर गयी है, बच्च दिन-रात रोया करता है। आँसू छिपाने के लिए सहाना ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

'एक दिन मरना तो सबको है; फिर कुत्ते-बिल्ली के लिए यदि सभी आँसू बहा दोगी तो मेरे लिए बचेगा क्या?'

'तुम फिर वही बाते करते हो।' उसने अभिमान से मुँह फेर लिया। बहुत दिनो के बाद पति के मुँह से उसी भूले-से परिहास को सुनकर वह विस्मित हो रही थी। गत प्रेम के दिनो का जीवन ही कितना था? बूँद भर ओस, जुगुनू की दीवट, फूल की पँखुड़ी की तरह छोटे, बहुत ही छोटे दिन, किन्तु उन छोटे दिनो की वह प्रेम-स्मृति सहाना के निकट अमर और अविनाशी थी।

'बहुत दिनो के बाद।' उसने धीरे से कहा।

'मै उन बातों को भूला नही हूँ सहाना। किन्तु मैं कभी आश्चर्य करता हूँ, सोचता रहता हूँ कि जिस अन्तर मे कभी दिन-रात प्रेम-प्यार की पुकार उठा करती थी, आज चेष्टा करने पर भी क्यो नही उठती? शायद मेरा यौवन मर चुका हो।' केशव का स्वर दर्द से भरा हुआ था। सहाना हँसी, उस हँसी की जाति ही निराली थी।

(२)

'पूजा के कमरे मे आज से तुम मत जाना दुलहिन।' सहाना की सास नर्मदा ने कहा।

फूल चुनते-चुनते वह रुकी—क्यो अम्माजी?

'सबेरे हल्कू को दूध नही पिला रही थी?'

'वह रो रहा था।'

'साईस का लडका रोये या मरे, अपने को क्या? बडे घर मे आई हो, जात-पाँत का भी तो कुछ विचार किया करो। कहाँ वह जैसवारा और कहाँ हम ब्राह्मण! कुत्ते-बिल्ली दिन-भर लिये रहती हो, मेरे हज़ार सर पीटने पर भी मानती नही। दिन-पर-दिन तुम हठी होती जाती हो। ऐसा अनाचार मैं सह नही सकती हूँ।'

उत्तर देने के लिए सहाना के कंठ में शब्दों की भीड़-सी लग गई। किन्तु फिर भी उसका उत्तर सक्षिप्त ही हुआ—वह छ महीने का अबोध शिशु है अम्माजी ! मरते वक्त दुखिया बच्चा मुझे सौंप गयी थी।

'आज जैसवारा तो कल मेहतर के बच्चे को उठा लाना। मेरे रहते इस घर मे तेरा अधिकार ही कौन-सा है ? मेरे मत विरुद्ध यहाँ कोई काम नही हो सकता है। उसे अभी दूर कर दे।' गृहिणी झुँझला पड़ी।

'नही।'

'क्या नही ?'

'नही।'

नर्मदा के चिल्लाने से केशव भीतर आ गया—'क्या है ?'

'भैया, मुझे तू काशी पहुँचा दे।'

'क्यो मा ?'

'क्योंकि मै नौकरानी बनकर नही रह सकती हूँ। तुम्ही से पूछती हूँ—घर की मालकिन बहू है या मै ?'

केशव को चुप रहते देखकर माता जल उठी—कहो, मै तुमसे सुनना चाहती हूँ।—माता ने अपना प्रश्न दुहराया।

'तुम्हारे रहते हुए तो दूसरी कोई मालकिन बन नही सकती। परन्तु उसे भी तुम्ही लाई हो, और अधिकार भी दिया है।'

केशव की पूरी बाते सुनने का धीरज उस समय गृहिणी मे था नही। नर्मदा ने कहा—तो तुम्हारे राज में आज क्या चमार-भगी के साथ बैठकर खाना पडेगा ?

'ऐसा करने को तुमसे किसने कहा ?

'तुम्हारी पत्नी ने। सवेरे से दुखिया के लडके को उठा लाई है कहती है, उसे रखूँगी।

'क्या यह सच है ?'

'हाँ ! उसकी मा मुझे सौंप गयी है।'

'किन्तु वह जैसवारा का लड़का है। इस घर मे उसकी जगह कैसे हो सकती है सहाना?'

'जैसवारे के घर में जन्म लेना क्या उसका अपराध है?'

उत्तर दिया नर्मदा ने—ऊपर से लगी जवाब-सवाल करने। तेरी हिम्मत देख-देखकर मैं अवाक् होती हूँ। दूसरी सास होती तो तुझ जैसी बाँझ का मुँह भी न देखती।'

व्यथा से उसका चेहरा पीला पड गया। अपने को सँभालकर सहाना ने कहा—मैं आप से नहीं, उनसे पूछती हूँ, कि यदि आत्मा अमर है, ईश्वर का अंश है, और सभी में उसी एक पावन आत्मा का प्रकाश है, तो यह छुआछूत का प्रश्न उठा ही क्यो और कसे?

'लोकाचार है, समाज का नियम है। जब कि उसी समाज में हमें रहना है, तब उसके नियमो को मानना भी जरूरी बात है।'

'मैं कब कहती हूँ कि तुम निराले समाज मे चले जाओ। किन्तु पुराने की महिमा में मुग्ध होकर उसके कीचड को सन्दूक में भरकर रखने मे कोई पौरुष, कोई श्लाघा नही है। प्रकृति के नियम से नित नई वस्तु बनती और मिटती है। पुराने में जो मिली वस्तु है उसका सम्मान और रक्षा हम अवश्य ही करेंगे। परन्तु बुरे को सदा त्यागने के साहस की कमी हममे कभी न हो, यह प्रार्थना मैं ईश्वर से किया करती हूँ।'

'तो तुम इस नियम को खराब कहती हो?

'हजार बार। आदमी आदमी को घृणा करेगा, यह निरी पहेली ही नहीं, अपराध भी है।'

'मैं घृणा की बात नही कहता, केवल मा के सम्मान के लिए तुम बच्चे को हटा दो, सहाना!' वह डर रहा था—क्योंकि स्वाधीन स्वभाव की पत्नी को वह भली-भाँति पहचानता था।—'नहीं' कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा—नही, यह असभव है, तुम्हारे और माँ के सन्तोष, सम्मान के

लिए अपने प्राण न्योछावर कर सकती हूँ, पर दूसरे के नही, और न उस वचन को तोड ही सकती हूँ, जो कि उसकी मरनसेज पर मैं दे चुकी हूँ।

'सहाना, आज इस जीवन के अन्त मे तुम मुझसे क्या सुनना, क्या कहना चाहती हो ?'

'कुछ भी नही।' उसने वालक को छाती से लगा लिया। जाते समय कहती गई—बच्चा भूखा है। इसे दूध पिलाकर फिर तुम्हारी बातें सुनूंगी।

माता-पुत्र स्तभित-से खड़े रह गये।

(३)

'सहाना, आलमारी की चाभी देना, कागज़ निकालना है।' मन्दिर के द्वार पर केशव ने पुकारा।

कटोरे मे चन्दन पोछकर शीला लौटी। एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उन दृष्टियो मे प्रश्न था—तुम कौन हो, कहाँ से आये ?

उसी दिन से सहाना का मन्दिर में जाना तथा रसोई आदि में जाना—नर्मदा देवी ने बन्द कर दिया था। ये बाते केशव जानता नही था, ऐसा नही। कदाचित् अभ्यासवश फिर भी वह उस दिन मन्दिर-द्वार पर खड़ा हो गया। उसे स्मरण हो आया कि रात में इसी शीला की बात सहाना कह रही थी। वह नर्मदा की अनाथ ज्ञाती कन्या थी, अविवाहिता थी। नर्मदा ने उसे बुला लिया था।

'चाभी तो मेरे पास नही है। मै शीला हूँ। कल यहाँ आई हूँ।'

इस तरुणी की सकोचहीन बातो से केशव कम विस्मित न हुआ। वह उन आयत नयनो के सामने सकुचित हो रहा था। बोला—'अच्छा तो मैं जाता हूँ।' किसी तरह इतना कहकर वह भागा।

भोजन के आसन पर बैठकर केशव विरक्ति से यहाँ-वहाँ निहारने लगा। शीला थाली और कटोरो को रखकर पखे से मक्खी भगाने लगी। रसोई ब्राह्मण बनाता था। किन्तु भोजन के समय सहाना सामने बैठती थी दो-चार तरकारियाँ भी पति के लिए अपने हाथ से बनाया करती थी

परन्तु हलकू के आने के बाद से गृहिणी उसे दूर रखकर स्वय उन कामो को कर लिया करती थी और आज उन्होने शीला को अपना स्थान सौंप दिया था।

'केशव, करेले कैसे बने है ?' माता सामने आकर खडी हो गई।

'अच्छे।'

'शीला ने बनाये है। बड़ी काम की लड़की है और वैसी ही नम्र-शान्त भी है। मैं जिस काम को कह देती हूँ उसे जी खोलकर करती है। आलू के बरे भी उसी ने बनाये है, अच्छे बने है न ?'

'हाँ।'

'क्यो झूठ बोलते है! आपने उन्हे छुआ तक नही।'—शीला हँस पड़ी।

अप्रस्तुत होने के साथ-ही-साथ शीला के सरल व्यवहार से केशव सन्तुष्ट भी हुआ।

'शीला सच कह रही है भैया! तुमने तो आज कुछ नही खाया।'

'खराब बना होगा।'

'नही-नही, सब चीजें अच्छी बनी है। भूख नही है।'

'फिर भी आप झूठ कहते है। मैं कहती हूँ मौसी, भौजी को बुला लो, अभी ये भरपेट भोजन कर लेंगे।'

इस तरुणी की मुँह पर सच कहने की शक्ति को देखकर केशव मन मे उसकी प्रशसा करने लगा।

'ऐसा तो नही हो सकता शीला कि मेरे जीते-जी घर मे भंगी-बसोरो का निवास हो जाये। बहू घर की लक्ष्मी कहलाती है, वही यदि अनाचार करने लगे, तो उस घर की भलाई कब तक हो सकती है! एक तो इस वश का ही नाश होने बैठा है। एक बच्चा तक नही हुआ। वश-रक्षा करना एक जरूरी बात है। किन्तु कोई सुनता ही नही। मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने हाथो अपना सर पीट लूँ।'

एक अनजान के सामने इन बातों की अवतारणा से केशव चिढ रहा था, फिर भी उसने हँसकर कहा—तो अपना सर पीटकर ही देख लो।

'क्या द्रात निकालते हो भैया, मेरा तो जी जला जाता है। उसी की बात सब कुछ हो गई और मेरी बात को कोई पूछता तक नही।'

'ऐसा तो नही है मा!'

'फिर तू ब्याह क्यो नही करता ?'

'विवाहित हूँ।'

'इससे क्या हुआ। वश-रक्षा के लिए लोग जाने कितने विवाह करते है। किन्तु इधर तो उसने सौगन्ध रखा दी है; मा की सौगन्ध को कौन मानता है।'

'उसने मुझसे कभी कुछ नही कहा, यह विचार तुम्हारा गलत है। उसका मन छोटा नही है, मा! वह तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ कहती नही।'

'अरे, मै सब कुछ जानती हूँ। आज वही तो तेरी सब-कुछ है। एक दिन वह था, जब कि इस बुढिया के बिना तेरा दिन कटना मुश्किल था। तेरी आँखो के सामने वह तेरी ही मा का अपमान करे? एक जँसवारे के लडके को घर मे रखे, दिन-भर गोद मे लिये रहे और तू औरतो-जैसा देखता रहे। धिक्कार है ऐसी जिन्दगी पर!'

केशव आसन पर से उठ पडा।

'तुमने ऐसा क्यो कहा मौसी, उन्होने खाया तक नही।'

'क्या मै चुपचाप यह सब सह लूँ?'

'किन्तु तुमने मेरे सामने क्यो कहा? यही बात उन्हे बुरी लगी।'

'तुमसे सच कहती हूँ शीला, केशव ऐसा नही था, बहू ने उस पर जादू किया है।'

इस बार शीला अपनी हँसी न रोक सकी। वह हँसते-हँसते लोटने लगी।

'तू हँसती क्यो है? इसमे हँसने की कौन-सी बात है?'

'तुम अन्धेर करती हो मौसी, भला जादू भी कोई चीज है? फिर भौजी के लिए तो ऐसे विचार भी नही उठ सकते, उनकी बातचीत की रीति, उनकी शिक्षा ही निराले ढग की है, वे हजारो मे एक स्त्री हैं।'

'तू भी ऐसा कहती है, शीला! मै तुझे अपना समझे हुए थी। मेरा भाग्य ही ऐसा है।'

शीला नर्मदा के गले से लिपट गई—नाराज हो गईं मौसी?

(४)

मल्लार रागिनी का आलाप लिये वर्षा तब पृथ्वी के सिरहाने उतर आई थी। घर-द्वार, तरु-पल्लवो मे उसके पैरों की हरियाली छाप पड़ने लग गई थी। उस हरियाली ने बूढे बट के नीरस हृदय तक को सजीवता के साथ ही-साथ रसपूर्ण भी कर दिया था। वर्षा की इस अलसाई हुई सन्ध्या ने केशव के निद्रालु चित्त मे नवीनता का मोहक मन्त्र फूंक दिया। वह धीरे-धीरे सहाना के कमरे की ओर बढ़ा। बहुत दिनों के बाद द्वार की ओर पीठ किये वह आईने के सामने खडी बालों को सँवार रही थी। बालों के गुच्छे कमर पर लहरा रहे थे। साडी का आँचल जमीन पर लोट रहा था। उसके ओठों पर हल्की-सी मुस्कान थिरक रही थी—वही रूप-यौवन की गर्वीली मुस्कान।

'सहाना!' उसकी पीठ पर हाथ रखकर प्यार से केशव ने पुकारा।

'आप?' चचल हरिणी की तरह वह लौटकर खड़ी हो गयी।

'तुम तो शीला हो! सहाना—मेरी सहाना को तुम लोगों ने कहाँ भगा दिया?'

'मैंने!' किन्तु दूसरे पल शीला सहमकर बोली—वे तो घर ही हैं, नीचे कुछ कर रही हैं।

'फिर तुम उसके कमरे मे उसी की तरह इस आईने के सामने क्यों खड़ी थी?'

शीला के लिए यह एक अद्भुत प्रश्न तो था ही, और जो कुछ था, वह था अपमान और तिरस्कार। फिर भी उसकी शिक्षा ने उसे आपे से बाहर होने से रोका। कौन-सी भयानक स्थिति ने केशव जैसे गंभीर प्रकृति के मनुष्य को इस तरह विचलित कर दिया है?—इस बात को सोचकर शीला सिहर उठी। वह हट गयी।

केशव पत्नी के सामने जाकर खड़ा हो गया—एक दीर्घ श्वास की तरह—कहाँ थी तुम?

सहाना जल्दी से हल्कू के उन नन्हे, प्यारे हाथों को छोड़कर ज़रा हट आई। वह जानती थी कि उसी दुखी, असहाय शिशु को लेकर उसकी गृहस्थी में कैसा तूफान उठा हुआ है।

'तुम मेरे साथ-साथ रहा करो सहाना।'

पति की उन व्याकुल बाँहों में अपने को सौंपकर वह उसका मुँह निहारने लगी। समुद्र-सा अथाह विस्मय उसके सामने था। बच्चा रोने लगा। इतनी देर के बाद केशव की दृष्टि हल्कू पर पड़ी—इसी के लिए आज तुम मुझे भूल रही हो? मेरी यह दशा हो रही है। सारे अनिष्ट की जड़ यही है। अच्छा ठहरो! केशव ने बालक को उठा लिया। शायद उसे फेंकना चाहता हो।

उन्मादिनी की भाँति सहाना ने बालक को छीन लिया। अपनी छाती से उसे लगाकर हाँफने लगी।

'उसे दे दो सहाना, वरना आज मुझे कठोर बर्ताव करना पड़ेगा।'

'नहीं, नहीं, मेरे बच्चे का खून मत करो। पहले मुझे मार डालो।' वह बच्चे को गोद में लेकर ज़मीन पर बैठ गई।

केशव को ज़िद-सी हो गई—मैं उसे लेकर ही छोड़ूँगा। वह उसे छीनना चाहने लगा। सहसा उसकी आँखें सहाना की आँखों से मिल गईं। सहाना की उस दृष्टि को वह सह न सका—यह कैसी रिक्त, सर्वशांत दृष्टि है? केशव सिहर उठा। उसके हाथ अपने-आप रुक गये। हृदय में प्रश्नों की झड़ी-

सी लग गई—वह जो गतयौवना, रूपवती नारी मर्द के रूप की प्यास बुझाने के लिए आज सब कुछ खो बैठी है, उसके जीवन के लंबे दिन क्या योंही दीर्घ श्वास की नाईं छोटे से पल में उड जायेंगे? अणु-परमाणु माता होने के लिए सृजे गये थे; उसे व्यर्थ करने अधिकार दुनिया मे किसी को भी था? शायद जीवन के आरंभ में वह पावन दीप जलाये सन्तान की प्रतीक्षा में बैठी थी। उसकी उस प्रतीक्षा को निष्फल किसने किया? पति के अभिमान से अन्धा बनकर उसके शुद्ध सुन्दर मातृत्व को छीन लेनेवाला वह राक्षस कौन था? कठोर तपस्या शेष कर जीवन की सन्ध्या-वेला मे जो रमणी भिखारिन की तरह सन्तान की भीख माँग रही है, उसकी भिक्षा की झोली आज वह किस चीज़ से भरेगा?

माता की उस मरुभूमि की-सी तृष्णा को वह किस तरह तृप्त करेगा? उसकी उस जरा-सी शान्ति, सन्तोष उस अभागे बच्चे को छीनकर क्या पतिपूजा का पुरस्कार वह इसी तरह देगा? केशव की चिन्ता मे बाधा पड़ी। सहाना ने बच्चे को उसके पैर तले डाल दिया—लो, लेते जाओ, आज मै इसे तुम्ही को सौंपती हूँ। दोनो हाथो से सहाना ने अपना मुँह ढाँप लिया। केशव ने एक बार पत्नी की ओर और दूसरी बार बच्चे को देखा, फिर हल्कू को धीरे से उठाकर सहाना की गोद मे डाल दिया।

(६)

जिस दिन उस बालक का अन्त हो गया, उस दिन सहाना की आँखो मे पानी की एक छोटी-सी बूँद तक नही थी। दिन एक-सा बहने लगा, सहाना का अन्तर का परिवर्तन बाहरी जगत् से छिपा ही रह गया, शायद जीवन-भर के लिए वह सब कामो मे योग देती और पति से हँसकर बातें भी करती, केवल दिन मे एक बार वह उस नन्हें बच्चे के चित्र को आँखों से लगा देती।

जिस दिन उसकी वह चोरी पकडी गई, उस दिन केशव ने विरक्त होकर

हा—बुढापे मे क्या तुम पागल हो जाओगी ? धूमकेतु यदि मरा भी तो नेशानी छोड गया !

'छि:, मरे हुए का जरा-सा सम्मान करना सीखो। उसकी भी आत्मा थी।' सहाना के कठ में तिरस्कार था।

'ऐसा! तो उस कमीने के लिए आँसू भी वहाना पडेगा?'

'फिर इससे तुम छोटे न हो जाओगे।'

'और कुत्ते-विल्ली के लिए किस-दिन आँसू वहाना होगा सो भी कह दो।'

सहाना ने उत्तर नही दिया। इन वातो का वह जवाव ही क्या देती ?

'अव जवाव क्यो नही देती ?'

'क्या इन वातो का उत्तर भी देना है ? और मुझी को।'

उन शब्दो मे कौन-सी सम्मोहनी भरी थी, सो तो केशव ही जाने, किन्तु इसके वाद मारे लज्जा के उसकी आँखे झुक गईं। पिछली वातो के स्मरण से शायद उसके मन मे अनुताप की छाया-सी पडी, किन्तु दूसरे क्षण वह वलात् ही अस्वीकार करने लगा—वह तो होनहार था।

झूठ से समझौता करते-करते लोग अपने जीवन की न-जाने कितनी अनमोल वस्तुओ को खो बैठते है, और शायद इसी से केशव फिर मिथ्या से समझौता करने लग गया।

'तुम बैठी फोटो देखती रहो। और मैं भूखा-प्यासा बैठा तुम्हारा मुँह निहारता रहूँ। यही कहना चाहती हो न ?'

'मै तुमसे कुछ भी कहना नही चाहती। भोजन कर लो।'

'धन्यवाद! इतनी देर के वाद याद तो आया।'

वह कह सकती थी कि आजकल भोजन छूने का अधिकार उसे नही है। कह सकती थी, अव उसके वदले शीला उन कामो को किया करती है; परन्तु नहीं, उसने कहा कुछ नही। चुपके से वाहर निकल गयी।

'आइए'।—शीला ने पुकारा।

केशव के कानों में अमृत की वर्षा हो गयी—कैसी दर्द-भरी पुकार है—मन में कहा केशव ने।

आसन के आगे मिठाई की रकाबी रखे बैठी थी शीला—उसी की प्रतीक्षा में। केशव का अन्तर-बाहर आनन्द, सन्तोष से भर उठा। सारे दिन परिश्रम के बाद घर में भी शान्ति नहीं मिलती थी। उस तरुणी की सेवा, सहानुभूति से केशव बिछुड़े हुए दिनों की उसी खुशी के समुन्दर में लहराने लगता था, थोड़ी देर के लिए।

गरम-गरम कचौड़ी रकाबी में डालकर शीला ने कहा—इनमें से एक भी न बचे, वरना दण्ड भुगतना पड़ेगा।

केशव ने शीला की ओर देखा, उस तरुणी के सारे अङ्गों से खुशी का झरना-सा झरता पाया।

'कौन-सी सजा मिलेगी शीला?' कौतुक से केशव ने पूछा।

'फिर इतनी ही कचौड़ियाँ और खानी पड़ेगी।'

'यदि न खा सकूँ?'

'तो इसी तरह रात-भर बैठे रहना पड़ेगा।'

'तुम मेरे सामने रहोगी न शीला?'

'जाइए!' ये मीठे शब्द बहुत ही मीठे ढङ्ग से कहे गये।

केशव चौंक पड़ा और उसके बाद वह एकदम उठकर भागा—चोर की तरह।

आकुल विस्मय से शीला उसे निहारती ही रह गयी।

❋ ❋ ❋

सहाना ने धीरे से पति के सिर पर हाथ फेरा, पूछा—इस समय तुम सोये क्यों, जी खराब तो नहीं है?

'सहाना, तुम्हीं मेरी सहधर्मिणी हो और तुम ही रहोगी।' दोनों हाथों से सहाना का हाथ पकड़कर वह बार-बार कहने लगा।

सहाना धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

'क्या वे पुराने दिन नहीं लौट सकते, सहाना?'

सहाना का हृदय व्यथा से विकल हो पड़ा।

'कहो सहाना, जवाब दो।'

'तुम्हारे दर्द को मैं और बढाना नही चाहती।'

'समझा नहीं'—केशव ने कहा।

'तुम जरा चुपचाप सो जाओ, जी ठीक हो जायगा।'

'नही, नही, मुझे कहने दो, सहाना—सहाना—!'

'मै जानती हूँ।'

'तुम! तुम—जानती हो! क्या जानती हो?' विराट् विस्मय से केशव की आँखे विस्फारित हो रही थी।

'सब बातो को। किन्तु तुम्हारे मुँह से सुनना नही चाहती।' वह हँसी।

केशव का सिर अपने आप झुक गया।

'कब से जानती हो?'—देर के बाद केशव ने पूछा।

'बहुत दिनो से।'

'तुमने मुझे सावधान क्यो न किया? मुझे अपनी बातो से खीच क्यो न लिया?'

'जबरन् भी? किन्तु नही; मै ऐसा नही कर सकती थी। वैसी भीख की झोली से मै घृणा करती हूँ—आन्तरिक घृणा। प्रेम-प्यार आदर की वस्तु जरूर है, परन्तु माँगने की नही। उसके लिए दूसरे से झगडना, छि! छि!'

सहाना घृणा से सिहर उठी।

'तुम पत्थर की बनी हो सहाना!'

'होगा भी।'—उदार स्वर से उसने कहा।

'अपना अधिकार मै इस अवहेलना से नही छोड सकता था।'

'अवहेलना? नही, घृणा कह सकते हो। मै कहती थी, ये सब बाते तभी ठ सकती है, जब कि अधिकार को कोई छोड देता!'

'फिर यह क्या है?'

'जो प्रेम एक बार किसी के द्वार पर लुट चुका था, वही प्रेम आज प्रतारक की तरह दूसरे के द्वार पर झाँकने लगे, तो उसके लिए सिर की जरूरत नही है। अधिकार मन की चीज है। प्रेम के उस को छीन लेने की शक्ति विधाता को भी नही है, फिर हम तो आदमी ही ठहरे सहाना उठी—अब मै जाती हूँ, काम पड़ा है।

(६)

काम करते-करते शिशु-कंठ के मीठे गीत से अनमनी-सी सहाना द्वार आकर खड़ी हो गयी।

गीत गा-गाकर नन्हे-नन्हे बच्चे देश के लिए भीख माँग रहे थे। सहाना पलकहीन नेत्रो से उन्हे देखने लगी।

'माताजी!' एक ने पुकारा।

'इन झोलियो मे कुछ डाल दो माताजी!' दूसरा बोला।

सहाना ने एक सुन्दर शिशु को गले से लगा लिया, बोली—क्या कहा भैया, फिर कहना।

'इन झोलियो मे कुछ डाल दीजिए।'

'नही-नही, उसी तरह फिर पुकारो।'

'माताजी!'

'और छोटे शब्दो मे।'

'माँ!'

'फिर पुकारो!'

'माँ-माँ!'

वह कान लगाकर सुनने लगी—माँ—माँ! एक स्वप्न-सा आँखों में छा गया—जैसे कि उसने अपने हृदय के खून—उस प्यारे बच्चे को देश के काम मे सौप दिया हो। सहाना देखने लगी—उसके उस देश-सेवा के श्रेष्ठ दान से, उस दृष्टान्त से प्रत्येक माता ने अपनी गोदी खाली कर दी। वह विस्मय के साथ देखने लगी—जल, वायु, आकाश शिशुओ से छा रहा है,

तिल बरावर भी कही स्थान नही है। 'यह कैसा विराट रूप है !' वह कह उठी।

'सहाना !'—पति की पुकार से वह स्वप्न-लोक से लौटी।

उसने उत्तर दिया—हाँ।

उस दृष्टि को केशव सह न सका। वह किस उद्देश्य से किसके पास आया है ?—उसकी चिन्ता विकल हो पडी—माँ से आज वह प्रेयसी को माँग रहा है ? गृहिणी के नयनो मे वह तरुणी की प्यास को देखना चाहता है ? सेविका से वह सोहाग माँगता है ? हाँ—इतने दिनो के वाद। केशव समझ ही न सका कि उसी के अनादर, अवहेलना से उसकी प्रेयसी मर चुकी थी—बहुत दिन पहले। और उसी नारी के भीतर अब जो कुछ था—वह था केवल माँ का गभीर स्नेह, और समुन्दर-सा प्यार।

कुछ विचारता हुआ केशव शीला के निकट आकर खडा हो गया।

'आइए। भूख लगी है क्या ?'—नदी के-से तरल स्वर से उसने पूछा।

केशव मुग्ध विस्मय से उसे निहारने लगा। और दृष्टि के आगे शीला खिलखिला पड़ी।

'मैं तुम्ही को ढूँढ रहा था शीला।' केशव का स्वर मृदु था।

नर्मदा ने पुकारा—भैया, ज़रा सुन जाना।

रात मे सहाना ने केशव के कागज़ो को हटाकर किसी प्रकार की भूमिका के विना ही कहा—शादी के लिए और तैयारियाँ तो मैंने कर ली है, केवल गहने तुम वनवा देना।

'किसकी शादी ?'

'शीला की।'

'वर कहाँ मिला ?' उसका कण्ठ काँप रहा था।

कुछ देर तक पति के मुँह की ओर देखकर सहाना ने उत्तर दिया—वह घर ही मे है।

'और मैंने उसे नहीं देखा ?'

'मैंने जब देखा है, तब तुम भी देख चुके हो !'

'याने ?'

'तुम हो !'

'मै, मैं !' वह पीछे हटा ।

'हाँ, तुम !'

'यह दिल्लगी अच्छी नहीं लगती, सहाना ।'

'दिल्लगी नहीं, सच ही कहती हूँ, इसी पन्द्रह तारीख को शादी होगी ।'

'असम्भव है ।'

'ऐसा मत कहो—सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं ।'

'ऐसा तुमने क्यो किया सहाना ?'

'क्योंकि इसकी जरूरत थी ।'

'फिर भी यह नहीं हो सकता है, इससे न तो मेरी ही भलाई है और न तुम्हारी, किसी के लिए कभी भी मैं तुम्हें दुःख नहीं दे सकता ।'

'तुम भूल रहे हो, तुम्हारे सुख के लिए मैं सब कुछ सह सकती हूँ, विशेषत. मेरे उस गत आनन्द की स्मृति को दुख की शिखा जला नहीं सकती है, तुम विश्वास रखो ।'

'किन्तु मैं तुम्ही से पूछता हूँ कि तुम जैसी स्त्री रहते हुए भी मैं विवाह करूँ ही क्यो ?'

'अपने मन से पूछो ।' वह हँसती थी ।

'मैं न तो कुछ सुनना चाहता हूँ और न कुछ पूछना, किन्तु यह विवाह हो नही सकता । सच कह रहा हूँ ।' वर के लिए सोचने की आवश्यकता नहीं है, उसी दिन वर तुम्हे मिल जायेगा ।'

शीला ने पुकारा—भौजी, चाय तैयार है । केशव ने सिर नीचा कर लिया, आज वह उस ओर देख तक नही सकता था ।

(७)

उस धनी परिवार के नौकरो से लेकर मालिक तक उस दिन व्यस्त थे। बाहर से शहनाई मधुर स्वर से मिलन-गीत अलाप रही थी। गलियो मे चादर बिछ रही थी। पानी के मटको मे गुलाब-जल मिलाया जा रहा था। बडी-बडी कढाइयो मे शाक-भाजी बन रही थी। हलवाई मिठाई बना-बनाकर बूढ़े-पुरानो को चखा रहे थे। सहाना और केशव घूम-घूमकर सब व्यवस्था कर रहे थे। शीला की शादी थी, एक धनी वर के साथ। बच्चे आँगन में धूम मचा रहे थे।

चहुँ ओर के उस आनन्द के भीतर लहराती हुई नदी की भाँति शीला हँस-हँस अपनी सखी-सहेलियो से मिल रही थी—स्त्रियो के बीच मे उसकी समालोचना हो रही थी। 'कैसी बेहया है? बहन, आजकल की लडकियाँ ऐसी ही होती हैं। बूढी हो जाती हैं तब कही दुल्हा मिलता है, इसलिए वे अपने आनन्द को छिपा नही सकती।'

शीला ने एक स्त्री को चिहूँटी ले ली।

'दुल्हा को चिहूँटी ले जाकर, मुझे नही।' स्त्री ने कहा।

'उन्हे तो रात मे लूँगी!'

'कैसी बेहया है तू शीला! तुझे लज्जा-हया कुछ भी नही।'

स्त्री की भौहे चढ गईं, जिसे देखकर शीला खिलखिलाकर हँसने लगी। चलते-चलते केशव लौटा। पल-भर के लिये उस खुशी की दीवाली की ओर उसने देखा, फिर काम मे डूब-सा गया। केवल सहाना उस हँसी को सुनकर सिहर उठी।

सन्ध्या समय बनाव-शृङ्गार शेष कर शीला दबे पाँवो उस द्वार के बाहर जाकर खडी हो गई, जहाँ कि केशव द्वार की ओर पीठ किये चुप-चाप खड़ा कुछ विचार रहा था। वह कुछ देर तक खडी उसे देखती रही, इसके बाद उसने वही से केशव को प्रणाम किया। केशव लौटा, उसने देखा एक छाया सामने से हट रही है।

व्यथा के साथ केशव ने पुकारा—शीला! परन्तु उत्तर न मिला।

'भ्रम था!'—दीर्घ-श्वास के साथ ये शब्द उसके कंठ से निकले।

बडी धूम से बारात आई। कन्यादान के समय शीला को लोग ढूँढ़ने लगे। किन्तु उसका पता कही भी न था। घर, द्वार, हर एक सन्दूक देखी गई, शीला न मिली।

दो बूँद आँसू पोछकर सहाना ने अख़बार मे विज्ञापन दिया—शीला, तुम लौट आओ, इस घर में तुम्हारा निरादर न होगा।

पगडण्डी

तब मै ऐसी नही थी। लोग समझते है, मैं सदा की ऐसी ही हूँ—मोटी, चौड़ी, भारी-भरकम; क्षितिज की परिधि को चीरकर, अनन्त को शान्त बनाती, ससार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लेटी हुई। वह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने!

तब मै न तो इतनी लंबी थी, न इतनी चौडी। न चेहरे पर ईंटो की सुर्ख़ी की ललाई थी, न शरीर पर कंकड़ो के गहने। मेरे दाये-बाये वृक्षो की जो ये कतारें देख रहे हो, वे भी नही थी, न फुट-पाथ था, न बिजली के खंभे। अप्सराओ की-सी सजी न ये दूकाने थीं न अँगूठी के नगीने की तरह ये पार्क। तब मैं एक छोटी-सी पगडण्डी थी—दुबली, पतली, सुकुमार, नटखट!

कब से मै हूँ, इसकी तो याद नही आती; किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अमराई के इस पार की कोई तरुणी नदी से जल लाने के लिए उस पार गई होगी; जैसे किसी छोटी-सी नगण्य घटना के बाद किसी प्रथा का जन्म हो जाता है, और उसके बाद फिर एक धर्म भी निकल पडता है; उसी तरह एक तरुणी के जल भर लाने के बाद गाँव की सारी तरुणियाँ घड़े में

जल लेकर अटकती, इठलाती एक ही पथ से आती रही होगी और फिर वही से मेरे जीवन की कहानी वह निकली।

मेरे अतीत के आकाश के दो तारे अब भी मेरे जीवन के सूनेपन की अँधियारी मे झलमला रहे है। यो तो सारी अमराई, सारा गाँव मेरे परिचितो से भरा था, किन्तु घनिष्ठता थी केवल दो जनो से, एक वट दादा और दूसरा था रामी का कुँआ।

बट दादा अमराई के सभी वृक्षो मे बूढे थे और सभी उन्हे श्रद्धा और आदर से बट दादा कहा करते थे। थे तो वे वृद्ध लेकिन उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवको से भी सरस था। वे अमराई के कुलपति थे। उनमे तपस्वियो का तेज भी था और गृहस्थो की कोमलता भी। उनकी सघन छाया के नीचे लेटकर वीते हुए युगो की वेदना और आह्लाद से भरी कहा-नियाँ सुनना, रिमझिम-रिमझिम वर्षा मे उनकी टहनियो मे लुककर बैठ पक्षियो की सरस वरसाती का मजा लूटना आज भी याद करके मै विह्वल हो उठती हूँ।

ठीक इन्ही से सटा हुआ रामी का कुँआ था—पक्का, ठोस, सजल, स्वच्छ, गभीर, उदार। साँझ-सबेरे गाँव की स्त्रियाँ झन्-झन् करती आती और अमराई को अपने कल-कंठ से मुखरित करके कुएँ से पानी भरकर मुझे भिगोती हुई, रौंदती हुई चली जाती।

मेरी चढती हुई जवानी का आदि भी इन्ही से होता है, मध्य भी इन्ही से और अन्त भी इन्ही से। भूलने की चेष्टा करने पर भी क्या कभी मै इन्हें भूल सकती हूँ?

मनुष्य के जीवन का इतिहास प्राय. अपने सगो से नही, परायो से वनता है। ऐसा क्यो होता है, समझ मे नही आता, किन्तु देखा जाता है कि अकस्मात् कभी की सुनी हुई बोली, किञ्चित्‌मात्र देखा हुआ स्वरूप, घड़ी दो-घडी का परिचय, जीवन के इतिहास की अमर घटना, स्मृति की अमूल्य निधि वनकर रह जाते हैं और अपने सगो का समस्त समाज, अपने

जीवन का सारा वातावरण कमल के पत्ते के चारों ओर के पानी की तरह छल-छल करते रह जाते हैं; उछल-उछल कर आते है, बह जाते हे; टिक नहीं पाते। मै सोचती हूँ, ऐसा क्यो होता है ? पर समझ नही पाती।

जेठ के दिन थे। अलस दुपहरी। गरम हवा अमराई के वृक्षो में लुढ़कती फिरती थी। वट दादा ऊँघ रहे थे। एक वृक्ष मे लिपटी हुई दो लताओं मे झगड़ा हो रहा था। मै तन्मय हो उनका झगड़ा सुन रही थी, इतने मे ही कुएँ ने पूछा—पगडण्डी, सो गई क्या ?

'नही तो'—मैंने कहा—इन लताओ का झगडा करना सुन रही हूँ।

कुएँ ने हँसकर पूछा—बात क्या है ?

मैंने कहा—कुछ नही, नाहक का झगड़ा है, दोनो मूर्ख हे।

कुएँ ने हँसकर कहा—संसार मे मूर्ख कोई नही होता, परिस्थिति सब को मूर्ख बनाती है। इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक और पगडण्डी बन जाय तो क्या यह संभव नही कि फिर तुम दोनो झगड़ने लग जाओ ?

मै तिनक गई। बोली—साधारण बात मे भी मेरा जिक्र खींच लाने का तुम्हें क्या अधिकार है ?

कुएँ ने पूछा—उन्हे मूर्ख कहने का तुम्हे क्या अधिकार है ?

मैंने कहा—मैं सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी, वे दोनो मूर्ख हैं, तुम भी मूर्ख हो, सब मूर्ख है ?

इतने मे ही बट दादा भी जग पड़े, बोले—किसको मूर्ख बना रही है ?

बात रुक गई, कुआँ चुप हो गया। दो दिन तक बोल-चाल बंद रही।

मैंने जान-बूझकर उससे झगड़ा क्यो किया, इसे वह समझ नही पाया। इसलिए मुझे सन्ताप भी हुआ और ग्लानि भी। स्त्री प्रेम से विह्वल हो जाती है और अपने उच्छ्वासित हृदय के उद्गारो को जब निरुद्ध नही कर पाती, तब वह झगडा करती है। स्त्री का सबसे बडा बल है रोना; उसकी सबसे बड़ी कला है झगडा करना। झगड़ा करके तिनकना, रूठकर रोना, फिर दूसरे को रुलाकर मान जाना, नारी-हृदय का प्रियतम विषय है। पुरुष, चाहे

कितना भी पढा-लिखा हो, साहित्यिक हो, दार्शनिक हो, तत्वज्ञानी हो, यदि वह इतनी सीधी-सीधी बात नही समझ पाता, तो सचमुच मूर्ख है।

यह घटना कुछ नयी नही थी, नित्य की थी। कोई छोटी-सी बात लेकर हम झगड़ पड़ते, आपस मे कुछ कह-सुन देते, फिर हफ्तो एक-दूसरे से नही बोलते। किन्तु वह बात, जिसके लिए मैं सब कुछ करती, सारा झगड़ा खड़ा करती, कभी नही होती। कुआँ मुझे कभी नही मनाता था। अन्त मे हारकर मुझे ही बोलना पडता, तब वह बोलने लगता, मानो कुछ हुआ ही नही। मैं मन ही मन सोचती, यह कैसा विचित्र जीव है कि न तो इसे रूठने से कोई वेदना होती है, और न मनाने से कोई आह्लाद। स्वय भी नही रूठता, केवल चुप हो रहता है; बोलती हूँ तो फिर बोलने लगता है, जैसे कुछ हुआ ही नही। हे ईश्वर! अपनी रचना की हृदयहीनता की सारी थैली क्या मेरे ही लिए खोल रखी है?

इस घटना पर मैंने विशेष ध्यान नही दिया, किन्तु वह बात रह-रहकर मेरे कानो मे गूँज उठती—"इस अमराई मे तुम अकेली हो, कल एक पगडण्डी और बन जाय तो क्या यह सभव नही कि फिर तुम दोनो भी झगडने लग जाओ?' इसका प्रतिवाद मैंने कैसे किया? उससे झगडा किया, उसे मूर्ख बनाया। कुँआ समझता है कि मै स्त्री हूँ और स्त्री-जाति की कमजोरी मेरी भी कमजोरी है। और इसका प्रतिवाद करने के बदले मैं स्वय उसके तर्क का प्रतिपादन कर देती हूँ, फिर मूर्ख मै हुई या वह?

मुझे रह-रहकर अपनी निर्बलता पर क्रोध आ जाता। यदि उसे मेरे लिए कोई सहानुभूति नही, मेरे रूठने की कोई चिन्ता नही, मुझे मनाने का आग्रह नही, तो फिर मै क्यो उसके लिए मरने लगी। यदि वह हृदयहीन है, तो मैं भी हृदयहीन बन सकती हूँ। यदि वह आत्म-निग्रह कर सकता है, तो मैं भी अपने-आप पर संयम रखना सीख सकती हूँ। मैंने कसम खाई कि फिर उससे रूठूँगी ही नही, और यदि रूठूँगी तो फिर

बोलूँगी नही, चाहे जो भी हो, प्रेम के लिए स्त्रीत्व को कलंकित नहीं करूँगी।

एक दिन की बात है। आश्विन का महीना था। बरसात अभी-अभी बीती थी। न कीचड थी, न धूल। छोटी हरी घासों और जगली फूलों के बीच में होकर मै अमराई के इस पार से उस पार तक लेटी थी। इस सघन हरियाली के बीच मे मुझे देखकर जान पडता मानो किसी कुमारी कन्या का सीमन्त हो। शरद मेरे अङ्ग-अङ्ग में प्रतिबिम्बित हो रहा था। मै कुछ सोच रही थी, सहसा कुएँ ने कहा—पगडण्डी, सुनती हो ?

मैने अन्यमनस्क-सी होकर कहा—कहो।

उसने कहा—तुम दिनों-दिन मोटी होती जा रही हो।

मै कुछ भी नही बोली।

कुछ ठहरकर वह फिर बोला—तुम पहले जब दुबली थी, अच्छी लगती थी।

मैने कहा—अगर मै मोटी हो गई हूँ, तो केवल तुम्हे अच्छी लगने के लिए मै दुबली होने की नही !

कुएँ ने कहा—यह तो मैने कहा नही कि दुबली होकर तुम मुझे अच्छी लगोगी।

मैने पूछा—तब तुमने कहा क्या ?

उसने कहा—कवियो का कहना है कि दुबलापन स्त्रियो के सौन्दर्य को बढा देता है। मोटी होने से तुम कवियो की सौन्दर्य की परिभाषा से दूर हट जाओगी।

मैने खीझकर पूछा—तुम तो अपने को कवि नही समझते न ?

उसने कहा—बिल्कुल नही।

मैने पूछा—फिर मोटी हो जाने पर मै कवियों को अच्छी लगूगी या बुरी, उससे तुम्हें मतलब ?

उसने शान्त भाव से कहा—कुछ भी नही, केवल यही कि मै उस

परिभाषा को जानता हूँ और उसे तुम्हे भी बतला देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

मैने गभीर होकर कहा—धन्यवाद !

स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, तो सब कुछ सह सकती है, पर अपने रूप का तिरस्कार नही सह सकती। स्त्री चाहे घोर कुरूपा हो, फिर भी पुरुष को उसे कुरूपा कहने का कोई नैतिक अधिकार नही। स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सबसे महान् सौन्दर्य है और उसके प्रति असुन्दरता का सकेत करना भी उसके स्त्रीत्व को अपमानित करना है। स्त्री के स्वरूप का उपहास करना वैसा ही है जैसा पुरुष को कायर कहना। मैं समझ गई कि कुआँ मुझ पर मार्मिक आघात कर रहा है, नही उपहास करना चाहता है। मैने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि चाहे अन्त जो भी हो, मै भी आज से युद्ध प्रारंभ करूँगी।

उसी दिन रात को चाँदनी खिली थी। रजनीगधा के सौरभ से अमराई मस्त होकर झूम रही थी। बट दादा पक्षियो को सुलाकर अपने भी सोने का उपक्रम कर रहे थे। बोले—सो गई बेटी ?

मैने कहा—नही दादा, ऐसी चाँदनी क्या सदा रहती है ? मेरे तो जी मे आता है कि जीवन-भर ऐसे ही लेटे-लेटे चांद को देखती रहूँ।

इतने ही मे कुआँ बोला—दादा, अमराई मे व्याह के गीत अभी से गाने शुरू करवा दो।

दादा ने पूछा—कैसा ब्याह ?

उसने कहा—देखते नही, प्रेम का पहला चरण प्रारंभ हो गया है; दूसरे चरण मे कविताएँ बनेगी, तीसरे चरण मे पागलपन का अभिनय होगा, चौथे चरण मे सगाई हो जायगी।

मुझे मन-ही-मन गुदगुदी-सी जान पडने लगी। सोचा, आज इसे खिझाऊँगी। मैने हँसकर कहा—दादा, देखो, अपने-अपने भाग्य की बात है। ईश्वर ने तुम्हे इतना ऊँचा बनाया है। तुम अपनी असख्य [illegible]

लियों से सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का अजस्र पान करते हो, और किसी एकान्त से आती हुई वायु में अनन्त स्नान करके विस्तृताकाश में सिर उठाकर प्रकृति की अनन्त विभूतियो का अनुशीलन करते हो। नक्षत्र से भरी हुई रात मे शत-शत पक्षियो को गोद में लिये हुए तुम चन्द्रलोक की कहानी सुना करते हो, उषा और गोधूलि नित्य तुम्हे स्नेह से चूम लिया करते हैं, प्रकृति का अनन्त भाण्डार तुम्हारे लिए उन्मुक्त है। मैं तुम्हारे जैसी ऊँची तो नहीं हूँ, फिर भी दूर तक फैली हूँ। वसुन्धरा अपनी सुषमा मेरे सामने बिखेर देती है, आकाश सूर्य और चन्द्रमा की किरणो का जाल मेरे ऊपर फैला देता है। वसन्त की मादकता, सावन की सजल हरियाली और शरद् की स्वच्छ सुषमा मेरे जीवन में स्फूर्ति प्रदान करती हैं। मैं केवल जीती ही नही, जीवन का उपभोग भी करती हूँ। किन्तु मुझे दु:ख उन लोगो को देखकर होता है, जिन्हें न तो सूर्य का प्रकाश मिलता है, न चन्द्रमा की किरणें; अन्धकार ही जिनके जीवन की भित्ति है और सूनापन ही जिनकी एक कहानी। वे आकाश को उतना ही बड़ा समझते है, जितना उनके भीतर समाता है, वसुन्धरा को उतनी ही दूर तक समझते है, जितना वे देख सकते हैं। दादा! उनका अस्तित्व कैसा दयनीय है, तुमने कभी सोचा है?

दादा कुछ नहीं बोले, शायद सो गये थे। लेकिन कुआँ बोला—सुन रहे हो, दादा! पगडण्डी कितना सच कह रही है। ऐसे लोगो से अधिक दयनीय जीवन किसका होगा? कुछ दिन पहले मैं भी यही सोचा करता था, किन्तु मुझे जान पडा कि ससार मे और भी अधिक दयनीय जीवन हो सकता है। ईश्वर ने जिसे सूर्य और चन्द्रमा के आलोक से वञ्चित रखा, आकाश का विस्तार और वसुन्धरा का वैभव जिसे देखने नही दिया, उस पर दया करके कम-से-कम उसे एक ऐसी चीज़ दे दी, जिससे वह ससार का उपकार कर सकता है, जिसे वह अपना कह सकता है, जिसके द्वारा वह संसार का किसी-न-किसी रूप में लक्ष्य बन सकता है। किन्तु

उससे अधिक दयनीय तो वे हैं जिनके सामने सृष्टि का सारा वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नही, रेखागणित की रेखा की तरह उनका अस्तित्व तो है, किन्तु उनकी मुटाई, लम्बाई, चौडाई सब कुछ काल्पनिक है। उनका अस्तित्व किसी दूसरे के अस्तित्व मे अन्तर्निहित है! वे सभी के साधन है, किन्तु लक्ष्य किसी के भी नही। ऐसे लोग भी दुनिया में है। दादा, क्या उन पर तुम्हे दया नही आती ?

दादा बिल्कुल सो गये थे। मैंने तैश मे आकर कहा—रामी के कुआँ, यदि तुम समझते हो कि तुम ससार के लक्ष्य हो और मै केवल साधन-मात्र, तो यह तुम्हारी भूल है। ससार में जो कुछ है, साधन ही है, लक्ष्य कुछ भी नही। लक्ष्य शब्द मनुष्य की उलझी हुई कल्पना का फल है! लक्ष्य एक भावना-मात्र है, स्थूल और प्रत्यक्ष रूप मे जिस किसी का अस्तित्व है, वह साधन ही है, चाहे जिस रूप में हो।

कुएँ ने गभीर स्वर मे कहा—तुमने मेरा पूरा नाम लेकर पुकारा इसके लिए धन्यवाद! मै उत्तर मे केवल दो बाते कहूँगा। पहली तो यह कि हमारा और तुम्हारा कोई अपना झगडा नही है, मैं समझता हूँ, व्यक्तिगत रूप से न तुमने मुझे कुछ कहा है, न मै तुम्हें कुछ कह रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि जैसा तुम कह रही हो, लक्ष्य और साधन में आकारिक अन्तर न होते हुए भी पारिमाणिक अन्तर है। ससार मे लक्ष्य नाम की कोई चीज नही, ठीक है, यहाँ जो कुछ है, किसी-न-किसी रूप मे साधन ही है, यह भी ठीक है। फिर भी मानना पडेगा कि साधनों में कुछ साधन ऐसी अवस्था में है, जिन्हें साधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ कहा ही नही जा सकता, और कुछ साधन ऐसी अवस्था में पहुँच गये है, जिन्हें ससार अपनी सुविधा के लिए लक्ष्य ही कहना अधिक उपयुक्त समझता है। इसका प्रत्यक्ष स्थूल प्रमाण यह है कि कुछ लोगो के यहाँ संसार आता है, हाथ फैलाकर कुछ माँगता है और फिर चला जाता है, संसार की स्थूल व्यावहारिक भाषा में वे तो हुए लक्ष्य और कुछ लोग ऐसे है जिनके यहाँ ससार आता है, किन्तु

इसलिए नही कि वह उनसे कुछ लेना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके द्वारा वह अपने लक्ष्य के पास पहुँच सकता है, तुम्हारी सूक्ष्म दार्शनिक भाषा में ऐसे लोग हुए साधन। समझी?

मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने रोक दिया, कहा—देखो, तुम्हारी चाँदनी डूब गई, अब तो सो सकती हो या नही?

कुछ दिन और बीते। मेरे प्रेम की आग पर आत्माभिमान की राख पडने लगी। कुआँ संसार का लक्ष्य है, मै केवल एक साधन हूँ। फिर मेरा उसका प्रेम कैसे हो सकता है! मै कभी-कभी सोचती, प्रेम में प्रतियोगिता कैसी? मान लो, वह ससार मे सब कुछ है और मै कुछ भी नही, फिर भी क्या यह यथेष्ट कारण है कि यदि मै उससे प्रेम करूँ तो वह उसका प्रतिदान न दे? कुआँ अपने सांसारिक महत्त्व के गर्व मे चूर है। वह समझता है कि उसके सामने मै इतनी तुच्छ हूँ कि मुझसे प्रेम करना तो दूर रहा, भर-मुँह बोलना भी पाप है। वह मुझसे घृणा करता है, मेरा उपहास करता है, बात-बात मे मुझे नीचा दिखाना चाहता है। बर्बर पुरुष जाति!

मैं दिनो-दिन उससे दूर हटने की चेष्टा करने लगी। उसके सामीप्य में मेरा दम घुटने लगा। वह महत्त्वशाली है, ससार उसके सामने भिखारी बनकर आता है और मैं? मेरा तो कोई अस्तित्व ही नही, किसी लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन-मात्र हूँ। मेरी उसकी क्या तुलना?

साँझ-सवेरे गाँव की स्त्रियाँ आती और पानी भर ले जाती। अलस दुपहरी मे पथिक अमराई मे विश्राम करने के लिए आते और कुएँ के पानी मे सत्तू सानकर खाते, फिर थोडी देर वृक्षो के नीचे लेटकर अपनी राह चले जाते। गाँव के छोटे-छोटे लडके अमराई मे आकर फल तोडते, कुएँ से पानी खीचते और फिर फल खाकर मुँह-हाथ धोकर चले जाते। जहाँ देखो, उसी की चर्चा, उसी की बात। मै अपनी नगण्यता पर मन-ही-मन कुढकर जली-सी जाती। मुझे जान पडता, मानो संसार मेरा उपहास कर रहा है, आकाश मेरा तिरस्कार कर रहा है, पृथ्वी मेरी अवहेलना कर रही है। मेरा

अस्तित्व रेखागणित की रेखाओ और बिन्दुओ का अस्तित्व है। मै सबकी हूँ, पर मेरा कोई नही; मै भी अपनी नही, केवल ससार को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए साधन-सी बनकर जी रही हूँ। मुझे यहाँ से हटना ही पडेगा। चाहे जहाँ भी जाऊँ, जाऊँगी जरूर। हृदय की शान्ति की खोज मे वन-वन भटकूँगी, वसुन्धरा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के अनन्त विस्तार को छान डालूँगी, यदि कही शान्ति नही मिली तो किसी मरुभूमि की विशाल सैकत राशि मे जाकर विलीन हो जाऊँगी, या किसी विजन पर्वत-माला की अँधेरी गुफा मे जाकर सो रहूँगी, फिर भी यहाँ न रहूँगी। वहाँ से मै हटने का उपक्रम करने लगी।

आधी रात थी। चाँदनी और अन्धकार अमराई के वृक्षो के नीचे गाढालिगन मे बँधे सो रहे थे। मुझे उस रात की सारी बाते अब भी याद है, मानो अभी कल ही की हो। मै अपने अतीत जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी स्मृतियाँ सहेज रही थी। इतने मे कुएँ ने पुकारा—पगडण्डी!

निशीथ के सूनेपन में उसकी आवाज़ गूँज उठी? मै चौक पड़ी। इतने दिनो के वाद आज कुआँ मुझे पुकार रहा है, मेरा कौतूहल उमड़ने लगा।

मैने कहा—क्या है?

कुआँ थोडी देर चुप रहा, फिर पुकारा—पगडण्डी!

शायद उसने मेरा बोलना सुना ही नही। मुझे आश्चर्य होने लगा, क्या आज कोई अभिनय होगा? मैने सयत स्वर मे कहा—क्या है?

कुआँ बोला—पगडण्डी, मै तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

मैने कहा—पूछो।

वह बोला—शायद तुम यहाँ से कही जा रही हो?

उस समय बिजली भी गिर पडती तो मुझे उतना आश्चर्य न होता। इसे कैसे मालूम हुआ? यदि मान लूँ कि किसी तरह मालूम भी हो गया, तो फिर इसे क्या मतलब? मै क्षण-भर मे ही न जाने क्या-क्या सोच गई,

कितने ही भावों से मेरा हृदय उथल-पुथल हो उठा, किन्तु मैंने सारा आवेग रोककर उदासीन स्वर मे कहा—हाँ !

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—तुम इस अमराई से जा रही हो, अच्छा है । मै बहुत प्रसन्न हूँ ।

मै कुछ उत्तर देने जा रही थी, तब तक उसने रोक दिया—ठहरो, मेरी बात सुन लो । जब तुम पहले-पहल यहाँ आई थी, तब जितना प्रसन्न मै हुआ, उतना और कोई नही । आज जब तुम यहाँ से जा रही हो, तब भी जितनी खुशी मुझे हो रही है, उतनी और किसी को नही । तुम इसका कारण जानती हो ?

मै कुछ नही बोली ।

वह कहने लगा—मै तुम्हें किसी दिन कहनेवाला ही था ! तुमने स्वयं जाने का निश्चय कर लिया । यह और भी अच्छा हुआ ।

मैने अन्यमनस्क-सी कहा—ससार मे जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है ।

कुआँ बोला—पगडण्डी, तुम यहाँ से जा रही हो, संभावना यही है कि फिर तुम कभी लौटकर नही आओगी । तुम्हारे जाने के पहले मै तुमसे अपने हृदय की एक बात, एक चिरसचित बात कहूँगा, सुनोगी तो ?

मेरे हृदय में उस समय दो धाराएँ बह रही थी; एक संशय की, दूसरी विस्मय की । फिर भी इतना है कि संशय से अधिक मुझे विस्मय ही हुआ । मैने सारा कौतूहल दबाकर कहा—कहते जाओ ।

कुआँ कहने लगा—मुझे अधिक कुछ नही कहना है । केवल दो बातें हैं । मैने तुमसे कभी नही कहा था । इसका कारण यह है कि अब तक कहने का समय नही आया था । तुम अब जा रही हो, जान पड़ता है वह समय आ गया, इसलिए कह रहा हूँ ।

थोड़ा रुककर, फिर अपने स्वाभाविक दार्शनिक ढङ्ग से उसने कहना शुरू किया—

'पहली बात यह है कि तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी आज तक मैंने जाहिर क्यो नही होने दिया। मुझे याद है, जिस दिन आकाश के ज्योतिष्पथ की तरह तुम पहले-पहल इस अमराई में आकर बिछ गईं, उस दिन मैंने दादा से पूछा—दादा, यह कौन है? दादा ने विनोद से कहा—तुम्हारी बहू! मैं झेंप गया। तब से लेकर आज तक एक युग बीत गया! कितने बसंत आये, कितनी बरसाते आईं, इस अमराई की सघन छाया मे हम दोनों ने कितनी कहानियाँ सुनी, कितने गीत सुनकर फिर भूल गये और कितनी बार हम आपस में लडे-झगडे हैं। इस अतीत जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी मेरे स्मृति-पट पर अमर-रेखा बनकर खिंच गई है और उन टेढी-मेढी रेखाओ को जोडकर जो अक्षर बनते हैं, उसका एक मात्र अर्थ यही निकलता है कि इस अमराई मे छोटी, पतली-सी जो एक पगडण्डी है, उस पगडण्डी के सूने उपेक्षित जीवन का जो निष्कर्ष है वह किसी एक युग या एक देश का नही, विश्व-भर के अनन्तकाल के लिए आलोक-स्तंभ बन सकता है। वह न रहे, किन्तु उसकी कथा युग-युग तक कल्पना-लोक के विस्तृताकाश में स्त्रीत्व का आदर्श बन आकाश-दीप-सी झलमलाती रहेगी।

'किन्तु इतना होते हुए भी आज तक मैंने तुमसे कभी कुछ कहा क्यो नही?

'इतना ही नही, मैंने अब तक तुम्हारे प्रति केवल उदासीनता और कठोरता के भाव ही प्रकाशित किये। नीरस उपेक्षा, आलोचनात्मक विनोद, इसके अतिरिक्त मुझे याद नही, मै और भी तुम्हे कुछ दे सका हूँ या नही! किन्तु क्यो? केवल एक ही कारण था।

'पगडण्डी, मै तुम्हे जानता था, तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह पहचानता था। मै तुम्हारे जीवन का दार्शनिक अध्ययन कर रहा था। मै जानता था, संसार के कल्याण के किस अभिप्राय को लेकर तुम्हारे जीवन का निर्माण हुआ है। मैं जानता था, किस लक्ष्य को लेकर विश्व की रचनात्मक शक्ति ने तुम्हे स्वर्ग से लाकर इस अमराई की घासो और पत्तो की सेज पर सुला

दिया है । मै यह भी जानता था कि तुम्हारे अवतरण का जो अन्तर्निहित अभिप्राय है, वह किस पथपर चलकर तुम अधिक-से-अधिक प्राप्त कर सकती हो ।

'जिस महान् उद्देश्य को लेकर तुम जन्मी हो, उसे मै जानता हूँ, इच्छा रहते हुए भी मै तुम्हारी कोई सहायता नही कर सकता । किन्तु हाँ, एक बात कर सकता हूँ । गायक अपनी तान को आरोह-अवरोह के बीच मे नचाता हुआ ले जाकर सम पर बिठा देता है । सुननेवाले उसे सहायता नही दे सकते, फिर भी अन्त मे सम पर एक बार सर हिला देते हैं । तान लौटकर घर आ गई, सबका सर हिल गया । पगडण्डी, अपने जीवन के उच्चादर्श को तुम्हे अकेले ही निभाना पड़ेगा, मै केवल इतना ही कर सकूँगा कि जिस दिन तुम्हारे जीवन की तान लौटकर घर आ जायगी, उस दिन उस सगीत म अपने को बहाकर सिर हिला दूँगा । तुम्हारे जीवन-सगीत के सम पर अपने को निछावर कर दूँगा, बस ।

'प्रेम से स्वर्ग मिलता है, किन्तु उससे भी ऊँचा, उससे भी पवित्र एक स्थान है । उसका वही पथ है जिस पर तुम जा रही हो, सेवा । प्रेम सभी कर सकते हैं, किन्तु सेवा सभी नही कर सकते । प्रेम करना ससार का स्वभाव है, किन्तु सेवा एक साधना है । प्रेम हृदय की सारी कोमल भावनाओ का आकुचन है, सेवा उनका प्रसार । प्रेम मे स्वयं लक्ष्य बनकर अपना एक कोई लक्ष्य बनाना पडता है, सेवा मे अपने को ससार का साधन बनाकर ससार को अपनी साधनाओ की तपोभूमि बना देना पडता है । प्रेम यज्ञ है और सेवा तपस्या । प्रेम से प्रेमिक मिलता है और सेवा से ईश्वर ।

'जन्म से लेकर आज तक तुम सेवा के पथ पर ही रही हो और अब भी उत्तरोत्तर उसी पर आगे बढती जा रही हो । तुम्हारे मार्ग मे जो सबसे बड़ा विघ्न बनकर खड़ा हो सकता है वह है प्रेम । प्रेम मनुष्यत्व है और सेवा देवत्व । तुम्हारी आत्मा स्वर्गिक होते हुए भी तुम्हारा शरीर भौतिक है । आत्मा और

शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी है। वसंत जब अपना मधु-कलश पृथ्वी पर उडेल देता है, वर्षा जब वन-वन मे हरियाली बिखरा देती है, शरद् के शुभ्राभ्र-खड जब आकाश मे तैरने लगते है, तब आत्मा की साधनाओ मे शरीर छोटे-छोटे सपने छीट देता है, सामवेद की मधुर गभीर ध्वनि मे मेघ-मल्लार की मस्तानी ताने भीन जाती है, सोमरस मे कादंब की बूँदे चू पडती है, कैलाश मे वसत आ जाता है। यह बहुत पुरानी कथा है। युग-युगान्तर से यही होता आया है, और यही होता रहेगा। फिर भी सभी इसे भूल जाते है। आँखे झप जाती है, तपस्या के शुभ्र प्रत्यूष मे अनुराग की अरुण उषा छिटक पड़ती है, साधना का वर्फ गलने लगता है, लगन की आग मँझाने लगती है, हृदय की एकान्तता मे किसी की छाया घुस पडती है, जागृति मे अँगडाई भर जाती है, स्वप्नो मे मादकता भीन जाती है, और....और जब आँखे खुलती है तब कही कुछ नही रहता। फिर से नई कहानी शुरू होती है—नई यात्रा होती है, नया प्रस्थान होता है, इसी तरह यह ससार चलता है।

'आत्मा के ऊपर शरीर का सबसे बडा प्रभाव है सशय। जब ससार मे सभी किसी-न-किसी से प्रेम करते है, सभी का कोई-न-कोई एक अपना है, जब किसी से प्रेम करना, किसी के प्रेम का पात्र बनना प्राणिमात्र का अधिकार है, तब फिर मै—केवल मै ही—क्यो इससे वञ्चित रहूँ? यह जीव की अमर समस्या है, शाश्वत प्रश्न है।

'किन्तु सत्य क्या है, लोग यह समझने की बहुत कम चेष्टा करते है। जिनके पैर है वे जमीन पर चलते है, किन्तु जिन्हे पख मिले है यदि वे भी जमीन पर ही चले, तो यह अपनी शक्तियो का दुरुपयोग है। जिन्हे ईश्वर ने आकाश मे उडने के लिए बनाया है, उनके लिए पृथ्वी पर चलना अपने महत्त्व की उपेक्षा करना है, अपने आपको भूलना है।

प्रेम करने की योग्यता सबमे है, किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी-किसी को ही मिलती है। सेवा करने की योग्यता रखना दण्ड नही, ईश्वर

का आशीर्वाद है जिसे ईश्वर ने संसार में अकेला बनाया है, धन-वैभव नही दिया है, सुख में प्रसन्न होनेवाला और दुःख में गले लगाकर रोनेवाला साथी नही दिया है, संसार के शब्दो में जिसे उसने दुखिया बनाया है, उसके जीवन मे उसने एक महान् अभिप्राय भर दिया है, शक्ति का एक अमर स्रोत, बेचैनी की तडफड़ाती हुई आँधी, उसके अन्तर में संजोकर रख दी है। हो सकता है वह इसे न समझे, शायद संसार भी इसे न समझे; फिर भी वह नहीं है, ऐसी बात नहीं; वह है, आवश्यकता है केवल उसे समझने की।

'पगडण्डी, तुम ईश्वर की उन्ही रचनाओं में से एक हो। तुम्हारा निर्माण इसलिए नही हुआ है कि तुम एक की होकर रहो, एक के लिए जियो और एक के लिए मरो। नहीं, तुम पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा उद्देश्य लेकर आई हो। जेठ की धधकती हुई लू में, भादों की अजस्र वर्षा में और शिशिर के तुषार-पात मे इसी तरह लेटी रहकर तुम्हें असंख्य मनुष्यों को घर से बाहर और बाहर से घर पहुँचाना पड़ेगा। सभ्यता के विस्तार के लिए, जीवन के सौख्य के लिए, संसार के कल्याण के लिए तुम्हें बड़ा-से-बडा त्याग करना पड़ेगा। तुम्हारा कोई नही है, इसलिए कि सभी तुम्हारे है, तुम किसी की नहीं हो, इसलिए कि तुम सभी की हो। तुम अपने जीवन का उपभोग नहीं करती हो, तुम विश्व की अक्षय विभूति हो।

'आज के पहले मैंने तुमसे कभी कुछ नही कहा था, कारण यह था— पगडण्डी, मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा करना, कि तुम्हारी आत्मा सोई हुई थी, केवल शरीर जगा था। तुम नही समझती थीं कि तुम कौन हो, किसलिए यहाँ आई हो, तुम ससार के पुराने पथ पर चलना चाहती थीं। आज, चाहे जिस कारण से हो, तुम्हे अपने वर्तमान जीवन से असन्तोष हो गया है, तुम्हें अपने से घृणा हो आई है। आज तुम अनन्त में कूदने जा रही हो, संसार में कुछ करने जा रही हो, तुम्हारी आत्मा जग उठी है। इन बातों को कहने का मुझे आज ही अवसर मिला है।

'पगडण्डी, तुम ऐसा न समझना कि मैं तुमसे स्नेह नही करता, उससे भी अधिक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। फिर भी अपने व्यक्तित्व को तुम्हारे पथ में खडा करके मैं तुम्हारी आत्मा की प्रगति को रोकना नही चाहता। मैं तुम्हारी चेतना मे अपनी छाया डालकर उसे मलिन नही करना चाहता। तुम्हारी सगीत-लहरी मे अपवादी स्वर बनकर उसे बेसुरा बनाना नही चाहता। मैं बडे उल्लास से तुम्हे यहाँ से विदा करता हूँ। जाओ—ससार मे जहाँ तुम्हारा अधिक उपयोग हो सके, वहाँ जाओ और अपने जीवन को सार्थक बनाओ—यही मेरी कामना है, यही मेरा सन्देश है, यही मेरा... क्षमा करना...आशीर्वाद है।

'केवल एक बात और कहनी है। मेरी हृदयहीनता को भूल जाना—हो सके तो क्षमा कर देना। मेरे भी हृदय है, उसमे भी थोडा रस है, पर मैंने जान-बूझकर उसे सुखा दिया, उसे आँखो में नही आने दिया, ओठो पर से पोछ डाला। तुम्हारे कर्तव्य-पथ को मैं अपने आँसुओ से गीला नही बनाना चाहता—पगडण्डी, मेरी कथा समझने की कोशिश करना, यदि न समझ पाओ तो ..तो फिर सब कुछ भूल जाना।

'संसार तुम्हारी राह देख रहा है, अनन्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जाओ, अपना कर्त्तव्य पालन करो। संसार तुम्हें कुचले तो तडपना नही, भूल जाय तो सिसकना नही ? भूले हुए पथिको को घर पहुँचा देना, जो घर छोडकर विदेश जाना चाहते हो उनकी सहायता करना। जब तक जीना, खुश रहना, कभी किसी के लिए रोना नही और—एक बात और—यदि तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम की भावना आ जाय, तो कोशिश करके, अपने अस्तित्व का सारा बल लगाकर, उसे निकाल डालना। यदि न निकाल सको, तो फिर वहाँ से कही दूर—बहुत दूर—चली जाना।

'पगडण्डी! विदा! तुम अपने ज्योतिर्मय भविष्य मे अपने धूँधले अतीत को डुबो देना। सब कुछ भूल जाना—वट दादा और रामी के कुआँ को भी

भूल जाना ! केवल यही याद रखना कि तुम कौन हो और तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है—बस जाओ, विदा !—ईश्वर तुम्हे बल दे ।'

कुआँ चुप हो गया । आधी रात की स्वप्निल नीरवता मे जान पड़ता था, उसका स्वर अब भी गूँज रहा हो, शब्द अन्तरिक्ष में अब भी घुमड़ते फिरते हो । मै कुछ बोल नही सकी, सोच भी नही सकी । तन्द्रा-सी छा गई, काठ-सा मार गया । उसके अन्तिम शब्द अर्धरात्रि के शून्य अन्धकार मे बिजली के अक्षरों में मानो चारो ओर लिखे हुए से उग रहे थे—'बस जाओ, विदा, ईश्वर तुम्हें बल दे ।'

ठीक-ठीक याद नही आता, कितने दिन हुए, फिर भी एक युग-सा बीत गया । मेरी आँखो के सामने वह स्वरूप आज भी रह-रहकर नाच उठता है, कानो मे वे शब्द अब भी रह-रहकर गूँज उठते है ।

अब मै राजधानी का राजमार्ग हूँ । दोनो ओर सहेलियो की तरह दो फुट-पाथ हैं, धूप और वर्षा से बचाने के लिए दोनो ओर वृक्षो की कतारें हैं, रोशनी के लिए बिजली के खंभे हैं, और न-जाने विभव-विलास की कितनी चीज़ें हैं । नित्य मेरा शृंगार होता है, मेरी देख-रेख में हज़ारो रुपये खर्च किये जाते है, राजमहिषी की तरह मेरा सत्कार होता है, जहाँ तक दृष्टि जाती है—बस, मै ही मै हूँ ।

उत्तरदायित्व भी कम नही है । मै शहर की धमनी हूँ, इसका रक्त-प्रवाह मुझी से होकर चारो ओर दौडता है । मै सभ्यता का स्तम्भ हूँ, राज-सत्ता का प्राण हूँ । इतनी भीड़ रहती है कि सोचने की फ़ुर्सत भी नही मिलती जनसमुद्र की अनन्त लहरें मुझे कुचलती हुई एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती हैं, मै उफ् तक नही करती । इतनी भीड़ में मुझे अपना कहने वाला एक भी नही, एक क्षण के लिए भी मेरा होनेवाला कोई नही । मेरे जलते हुए निर्विश्राम जीवन पर सहानुभूति की दो बूंद छिडक दे, ऐसा कोई नही । फिर भी मै व्यथित नही होती; खुश रहने की कोशिश करती हूँ, वेदना के शोलों पर मुस्कराहट की राख बिखेरती रहती हूँ, ओठों में हृदय

को छिपाये रखती हूँ। जहाँ तक होता है, उसने जो कुछ कहा था, सब करती हूँ। केवल एक ही बात नही होती, उसे भूल नही पाती !

अमराई की छाया मे घासो और पत्तो पर वह जीवन, पक्षियो के गाने, लताओ का झगडा, बट दादा की कहानियाँ, और. .और क्या कहूँ ? कितनी बातें है जो भुलाई नही जा सकती ? मेरे जीवन-सगीत की तान लौटकर सम पर आती है, आकर फिर लौट जाती है, पर किसी का सिर नही हिलता ?

यह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने ? एक समय था जब मैं ऐसी नही थी।